श्री वीतरागाय नमः

श्रमण भगवान् महावीर चरित

(सम्पूर्ण चरित काव्य)

अभय कुमार यौधेय

मेरठ (उ० प्र०)

प्रकाशक : भगवान् महावीर प्रकाशन संस्थान, बी/७० जैन नगर, मेरठ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण : अगस्त १९७६

मूल्य : पचास रुपये (भारत में)
विदेश में—१० डालर अथवा ८० शिलिंग।

मुद्रक : नव युगान्तर प्रेस, शारदा रोड, मेरठ

चित्र साज-सज्जा : श्री रवि प्रकाश जैन

SHRAMAN BHAGWAN MAHAVEER CHARITRA

By ABHAI KUMAR YAUDHEYA

(CHARIT-KAVYA or Epic of Growth)

Rs. 50/-

सर्मापत—

चरित्रनायक को !
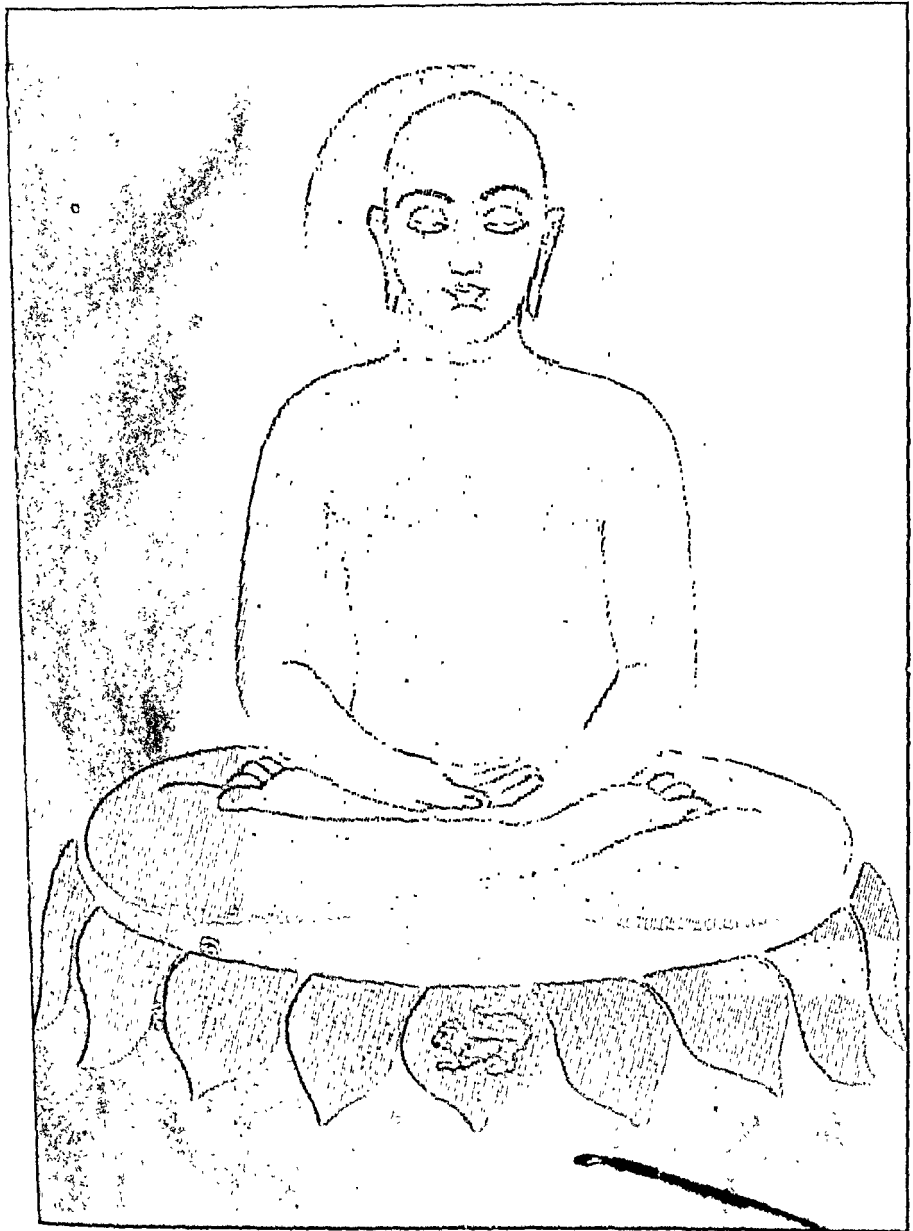
कवि →

परिचय—

जन्म-स्थान—पट्टी जि० अमृतसर (पंजाब)

जन्म—२१ अगस्त, १९२३ ई०

पिता—श्री हंसराज जी जैन (नाहर)

माता—श्रीमती पूर्णदेवी जैन

परिवार के सदस्य—अन्य दो बड़े भाई, एक छोटी बहन, एक पुत्र और तीन पुत्रियां।

अभयकुमार 'यौधेय'

कार्य-क्षेत्र—प्रारम्भ में सिने गीतकार, कथाकार और निर्देशक। लेखन कार्य सन् १९४३ से आरम्भ किया। उर्दू, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। आरम्भ से अब तक, अध्ययन-मनन और पर्यटन में अधिकतर समय व्यतीत होता है। देश-विदेश में प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। कभी धनियों के महलों में तो कभी दीन-दुखियों की पर्णकुटियों में जाकर रहने में कोई असुविधा नहीं होती। दुःखी के दुःख से दुःखी और सुखी के सुख से सन्तुष्ट होते हैं। कुछ पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है।

कला और ज्ञान को बहुजन हिताय—बहुजन सुखाय मानते हैं। स्वभाव से जिज्ञासु और विद्यार्थी हैं। अपनी रचनाओं को लेकर शोर करना इन्हें पसन्द नहीं। वस्तु में कमाल होगा तो कद्रदानों की कमी नहीं। अकबर इलाहाबादी का शेर गुनगुनाया करते हैं : कमी नहीं है कद्रदां की अकबर।
करे तो कोई कमाल पैदा॥

इनके लिए सब से प्रिय है तो जननी जन्म भूमि और लक्ष्य है लोक-कल्याण। अत्यन्त करुणाशील, न्यायप्रिय और संवेदनात्मक संगीतमय व्यक्तित्व एवं ओजस्वी निर्भीक वक्ता। अभी भी मनन, चिन्तन और लेखन में जुटे हैं।

—डा० जीवन प्रकाश जोशी

साधना-सीकर

श्री 'यौधेय' की प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ

उपन्यास	सन्
अन्धकार के पार (दो भाग)	१९४३
अनामिका	१९४४
डंके की चोट	१९४४
पहला मूर्तिकार	१९५२
नई चेतना	१९५४
मुक्तिदूत	१९५४
सुबह के देवता	१९६२
संस्कारों के बन्धन	१९५८
कसौटी के पत्थर	१९६७
गूंजती आवाज	१९७०
जय-मुक्तिवाहिनी	१९७१
ढाका-विजय	१९७१
गंगा से पवित्र	१९६६
कल कौन देगा ?	१९६०
जलते दीप, ढलती रात	१९६०
त्याग और तृप्ति	१९६०
सावन हँसाए—भादों रुलाए	१९६२
ईरान की हसीना—तीन चुड़ैलें इत्यादि	१९६२

नाटक	
हिमाहिमा	१९४६
नारी की साधना	१९५४
शिव-भक्त	१९५७
टूटे तारे	१९५८
मातृ-अभिमान	१९५१

ये चरित्र काव्य : ये कवि

नई-पुरानी कविताओं-समालोचनाओं की पुस्तकों के बीच भव्यता-मंडित एक डमी-पुस्तक—'**श्रमण भगवान् महावीर चरित्र**', रचनाकार श्री अभय कुमार 'यौधेय' ।...

यौधेय जी से मैं पिछले बीस बरस से परिचित हूँ । अरे, उनसे मिलिए तो पहले परिचय में ही आपकी भी पहली प्रतिक्रिया होगी कि वे साक्षात् महावीर जैसे ही हैं । मोटे-ताजे, बोलने में बुलन्दी, कहने-सुनने में लापरवाही; और एक ऐसी मनमस्ती से भरी हुई अदा—कि गजब ! कोई दिल का काईयाँ तके तो धड़क उठे, जवाँ-मर्द निहारे तो (अब भी) गलहार बनने को ललक उठे ।...

'यौधेय' सचमुच एक योद्धा हैं । श्रमण की परम्परा के 'प्रतीक' से लगते हैं वे । उन्होंने जीवन में जीने के लिए लाजवाब युद्ध किया है, और अनवरत श्रम से साधना का एक स्वरूप गढ़ा है—उनका लेखन इसका सबूत है । ··· तो मैंने कहा कि 'यौधेय' एक योद्धा हैं—तन से भी, मन से भी । 'यौधेय' की लेखनी में ज़ोर है, शोर नहीं—होश है, जोश नहीं । उनकी भाषा लच्छेदार नहीं, वफ़ादार है । उनके छन्द निर्दोष नहीं, इसलिए क्योंकि कवि कथ्य का कायल है—उनका नहीं । उनके कथ्य वृक्षों से घने हैं, इसलिए छन्द छोटे पड़ जाते हैं । 'यौधेय' रचनाओं से जड़ता जगाता है, ललित-फलित संदेश देता है ।...

'यौधेय' जीवन का एक योद्धा है । जनता का कवि है । और सबसे ऊपर यह कि वो दुर्बल और सबल दोनों पक्षों के साथ जीवन और रचना को लेकर चलता है ।

× × ×

'यौधेय' जी का एकदम अप्रत्याशित आग्रह हुआ है कि उनके अभिनव प्रकाश्य "**श्रमण भगवान् महावीर चरित्र**" से मैं भी इसी तरह, किसी तरह, जुड़ जाऊँ, जैसे उनसे बीस बरस से जुड़ा-जुड़ा रहा हूँ—जीवन-कर्म-संघर्ष के मैदान में जुदा-जुदा रहकर भी । 'यौधेय' जी का स्वभाव ही ऐसा है कि वे तूफानी अंधेरों में साहस के दिए जलाने का संकल्प साकार करने को जुटते हैं, जीवन की जद्दोजहद में से मानस और मानवता के मूल्यों को खोजने-निकालने के सतत श्रम-साधन

बुद्ध, कन्फ्यूशियस, जरथुस्त्र, ईसा, पायथागोरस, सुकरात, अरस्तू,...महावीर जी महान् परम्परा के महापुरुष हैं, जिन्होंने आदमी के अस्तित्ववाद और विश्व-आत्मा के अस्तित्ववाद में कोई फाँक नहीं देखी, फर्क नहीं देखा, संघर्ष नहीं देखा; सूक्ष्म समानता देखी, सहिष्णुता देखी, स्याद्वाद देखा।

अपने युग में महावीर स्वामी ने असद् प्रवृत्तियों का, कठिनतम् श्रम-साधना द्वारा, परिहार-परिष्कार करने का, और मोक्ष प्राप्त करने का, जन-जन को महान् संदेश दिया था। उन्होंने उन मानवीय मूल्यों को कायम करने का उपदेश दिया जिससे जीव वाह्य-जड़-प्रकृति की रागमाया से मुक्त होकर आत्मोपलब्धि की ओर सम्प्रेरित होता है। यह संदेश किसी एक युग, एक भू-भाग, एक धर्म-जाति-सम्प्रदाय का नहीं, वल्कि सबके लिए, सब जगह के लिए, सब समय के लिए है। और तब तो और भी ज्यादा, जब एक युग और उसका मानव भौतिकता की जड़ता-विषमता के पाटों में पिसता हो, जैसा इस युग में खास है। और इसलिए, इस युग में मानवता को इन संदेशों की ज्यादा जरूरत है, उनका खास महत्त्व है। यों महावीर जी विश्व के महान् महामानव हैं।

'यौधेय' जी रचित महावीर जी के प्रस्तुत जीवन-चरित्र में, समग्रतः, एक ऐसा दर्शन-बिम्ब उभरता है जो सम्प्रेरित करता है कि सांसारिक वस्तुओं का परित्याग करें, मोह-माया-ममता से मुकम्मिल तौर पर मुक्त हों, आत्मा की आन्तरिक ऊर्जा और उसके गौरव को प्राप्त करें। यह जीवन-चरित्र इंगित करता है कि केवल पोथे पढ़कर ही सही मंजिल नहीं मिलती, वल्कि लोक-जीवन में घुल-मिलकर ही, कष्टकर अनुभवों की आग में तपकर ही, प्रेम–दया–करुणा–क्षमा–सेवा–श्रम–अहिंसा–मनन–निदिध्यासन आदि पूर्ण साधनात्मक-सकर्मक-प्रकृति को साधकर ही, जीवन-मोक्ष मिल सकता है, मनुष्य मंजिल पा सकता है—सच्चे सुख की; कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और अहिंसा से, और आडम्बर से दूर होकर ही, मानव-कल्याण हो सकता है। अतः अनेकान्तवाद, सप्तभंगी-नय या स्याद्वाद के सोपानों पर चढ़कर ही और किसी भी कूट-गुटबन्दी से अलग रहकर ही मनुष्य आत्मानन्द प्राप्त कर सकता है। यों ये सब मानवता के वे मूल्य हैं जिनका सीधा सम्बन्ध जगत् के शिवं-सत्यम्-सुन्दरम् से है, और जो हर युग के, हर देश के, हर धर्म के, मानव की आकांक्षा के केन्द्र और उसकी जीवनोपलब्धि के सार हैं। महावीर जी की शिक्षाएँ और उनका चरित्र, जो इस चरित्र-काव्य में उद्घाटित हैं, इन्हीं मूल्यों को धारण करने की, उन पर ध्यान लगाने की, प्रेरणा प्रदान करता है और काव्य के सन्दर्भ में यह एक महान् उद्देश्य की व्यंजना है।...

श्वेताम्बर जैनाचार्यों-कवियों—सोमप्रभ सूरि, मेरुतुंगादि—ने अपभ्रंश भाषा में तीर्थंकरों के चरित्र का वर्णन किया है। 'वर्द्धमान चरित्र' का वर्णन विभिन्न कथाओं में 'कल्पसूत्र' और 'स्थानांग-सूत्र' ग्रन्थों में हुआ है—मैंने ऐसा सुना-जाना है। लगता है, 'यौधेय' जी की प्रस्तुत चरित्र-रचना के उपजीव्य भी यही ग्रन्थ हैं; और शायद इन्हीं को जैन लोग पूर्ण प्रामाणिक भी मानते हैं—ऐतिहासिकता से इस मान्यता का कोई टकराव नहीं है। और अगर होगा भी, तो कवि या धर्मानुयायी ऐतिहासिकता को प्रायः अपनी श्रद्धा-आस्था से सदा परास्त करता आया है। कुल मिलाकर 'यौधेय' जी के इस काव्य का कथ्य, लगता है, अधिक प्रामाणिक, आस्थामय और सहज अभिव्यक्ति की प्रेरणा से प्रसूत है; और महावीर जी के चरित्र के प्रति आस्था और आकर्षण पैदा करने की उसमें प्रेरणा तथा संवेदना प्रचुर है। महावीर जी के चरित्र को कवि ने मानवीय संवेदना की अर्थवत्ता से जोड़ा है। उसकी पृष्ठभूमि प्राचीन होते हुए भी सुपाच्य प्रतीत होती है।··· भणिति और अभिव्यंजना की दृष्टि से इस रचना में किसी विशिष्टता का आभास तो नहीं होता। कवि का दावा यह है कि उसने जन-काव्य रचा है, और जिसे उन्होंने सृजनकाल में ही जनता में गाया और सुनाया है—और जिसे जनता ने पसन्द किया है। ऐसा होना एक बात है। लेकिन जन-काव्य में भी काव्य की अभिव्यंजना के तत्वों को सही रूप में उपयोग करना एक महत्वपूर्ण बात है। प्रस्तुत काव्य को पढ़कर पहली और प्रखर प्रतिक्रिया यह होती है कि वाणीगत संयतता पर कवि का अधिकार कुछ 'और' होना चाहिए था। छन्द-योजना कसी हुई नहीं है। स्थल-स्थल पर मात्रिक दोष हैं। विन्यस्ति में बिखराव है, और वर्णन में ऊर्जा का अभाव अनुभव होता है। जिन अंशों में ऐसी बात नहीं है, वे उच्चकोटि के हैं। इस चरित्र के कुछ अंशों की अभिव्यंजना काव्यत्व के उत्कृष्ट तत्वों से अवश्य पूर्ण है, पर अधिकांश ऐसा भी है जिसमें थोड़े सुधार-संशोधन से भणिति की विशिष्टता बन सकती है। भणिति की दुर्बलता पर अधिक आक्षेप वाली बात यहाँ इसलिए भी अपेक्षित नहीं है क्योंकि अन्ततः तो यह एक चरित-काव्य है, और चरित्र-काव्य में भाषिक-संरचना की बात जरा गौण होती है, उसके 'प्रतिपाद्य' की बात बड़ी प्रधान। जहाँ तक 'प्रतिपाद्य' का प्रश्न है, इसमें दो मत नहीं हो सकते कि, एक सीमा में होते हुए भी, इस काव्य की शक्ति और सहजता और संवेदन-संकुलता ऐसी है जो खड़ी-बोली काव्य-संसार में पहली बार प्रगट हुई है; और उसके द्वारा महावीर जी के जीवन-चरित्र को सहज में भावित करने में सहायता मिलती है। मुझे विश्वास है, चरित्र-काव्य की परम्परा में, महावीर जी पर लिखे इस खड़ी बोली के काव्य का, ऐतिहासिक जन-काव्य की दृष्टि से, अपना महत्व सदा बना रहेगा।

स्मरणीय

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण। सूत्र० १।१।१।१०।

अर्थ—किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है।

आय तुले पयासु। सूत्र० १।११।३।

अर्थ—प्राणियों के प्रति आत्म-तुल्य भाव रखो।

धम्मस विणओ मूलं। दश० ६।२।२।

अर्थ—धर्म का मूल विनय है।

समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए। आ० १।८।३

अर्थ—आर्य महापुरुषों ने समभाव में धर्म कहा है।

चत्तारि धम्मदारा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे। स्था० ४।४

अर्थ—धर्म के चार द्वार हैं—क्षमा, सन्तोष, सरलता और नम्रता।

ओए तहीयं फरुसं वियाणे। सूत्र० १४।२१

अर्थ—सत्य वचन भी यदि कठोर हों तो वह मत बोलो।

परोपकारः पुण्याय—पापाय परपीड़नम्। —महर्षि वेदव्यास

बन्धप्पमोक्खो तुज्झज्झत्थेव। आचा० ५।२।१५०

अर्थ—बन्धन से मुक्त होना तुम्हारे ही हाथ में है।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि। उत्तरा० ४।३

अर्थ—उपार्जित कर्मों का फल भोगे बिना मुक्ति नहीं है।

परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स। दश० ४।२७

अर्थ—जो साधक परीषहों पर विजय पाता है, उसके लिए मोक्ष सुलभ है।

अवि अप्पणो वि देहंमि, नायरंति ममाइयं। दश० ६।२२

अर्थ—निर्ग्रन्थ मुनि, अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं रखते।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खंतिओ ।

वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ उत्त० २५।३१

अर्थ—मनुष्य, कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है ।

खामेमि सव्वेजीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे ।

मेत्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ । पंच प्रति०

अर्थ—मैं समस्त जीवों से क्षमा मांगता हूँ और सब जीव मुझे भी क्षमा प्रदान करें । मेरी सब जीवों के साथ मैत्री है, किसी के साथ भी मेरा वैर विरोध नहीं ।

दुल्लहे खलु माणुसेभवे । उत्त० १०।४

अर्थ—मनुष्य जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है ।

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं । सूत्र० १।६।२३

अर्थ—सभी दानों में अभयदान सर्वश्रेष्ठ है ।

× ×

एक प्रतिक्रिया

कविवर अभयकुमार यौधेय विरचित महाकाव्य के कुछ अंश पढ़ने का मौका मिला। यौधेय जी की लेखनी से प्रसूत भगवान् महावीर जी के जीवन चरित पर यह पहला महाकाव्य है जो देश, काल और समाज के मान-मूल्यों के साथ-साथ आने वाली पीढ़ी के लिए गौरवदर्शन का काम करेगा।

देश-विदेश के लोगों का एक बहुत बड़ा वर्ग, भगवान् महावीर जी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करता रहा है, पथ प्रशस्त करता रहा है, बस इन्हीं मान-बिंदुओं के आधार पर यौधेय जी ने एक ऐसे सांस्कृतिक मर्यादा से परिपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है जिसका जन-जन में पारायण किया जाता रहेगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

—डा० उमाशंकर सतीश

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
हौज खास, नई दिल्ली

माहात्म्य

वर्धमान का पावन जीवन, कलिमल-शोधक धारा है।
यह गंगा की शांतिदायिनी, पतित पावनी धारा है ।।१।।

जिस घर में बहती यह धारा, वह घर तीर्थराज मानो।
जिस मुख से निकले यह गाथा, उसको गंगोत्री जानो ।।२।।

दो कानों से होकर अमृत, मन में सहज उतर जाए।
मोह-लोभ-अभिमान क्रोध का, विष भी सहज उतर जाए ।।३।।

प्रभु ने जीवन को उबारने, का रस्ता है बतलाया।
स्वयम् साधकर जीवन अपना, मुक्ति मार्ग है दिखलाया ।।४।।

प्रभु के जीवन की यह गाथा, जो श्रद्धा से श्रवण करे।
उसका जीवन, सदा सुखी हो, जिस मन में यह रमण करे ।।५।।

अमर साधना महावीर की, जब जीवन में आएगी।
नर से नारायण बनने की, शक्ति, अन्त में आएगी ।।६।।

विनय के स्वर

उठा जलधि में ज्वार,
उफनता फेनिल जल है।
वैसा ही अनुभूति-ज्वार,
बेबस प्रतिपल है ॥१॥

मंगल रूप अनूप,
सिद्ध भगवान् विराजित।
सकुचाता है तिमिर–
देख आलोक अपरिमित ॥२॥

ऐसा ही सिमटा-सा–
मेरे कवि का मानस।
जैसा वन में भटका एक–
तृषित–सा तापस ॥३॥

करुणाकर की अतिशय–
करुणा, जो हो जाय।
वीणापाणि – विराजित–
जिह्वा पर हो जाय ॥४॥

तो मैं गाऊँ चरित वीर का,
नगर नगर में।
चरण-धूलि ले गुणिजन की,
हर डगर-डगर में ॥५॥

स्तवन

अरिहन्त कहो या सिद्ध कहो
तुम ही हो मेरे राम,
तुम घट-घट वासी राम ! अरिहन्त कहो······

तुम ब्रह्म कहो, शिव शम्भु कहो,
परमेश्वर या, गोविन्द कहो,
हर हर बोलो, अरिहन्त कहो !
श्री वीतराग भगवान् !—१
तुम घट-घट वासी राम ! अरिहन्त कहो······

हे मंगलमय हितकारी
हे ज्योतिपुञ्ज भगवान्,
हे ज्ञानधाम, करुणा-निधान–
अरिहन्त देव भगवान् !—२
तुम वीतराग भगवान् !
तुम घट-घट वासी राम ! अरिहन्त कहो······

तुम बुद्ध कहो–अमिताभ कहो
जगदीश्वर या, सुरपाल कहो,
तुम कर्मवीर–तुम महावीर–
तुम शबरी के श्रीराम !
तुम वीतराग भगवान् !—३
तुम घट-घट वासी राम ! अरिहन्त कहो······

पृष्ठ भूमि

आकाश लोहित था, धरती विप्लवमय ! मानव स्वभाव से हठीला, हिंसक, दम्भी और लोभी हो चुका था। अपनी हिंसक और कामुक प्रवृत्ति से जहाँ उसने इस पुण्य धरा को नरक बना डाला था, वहाँ वह, स्वयं क्रूरता, हिंसा, लोभ और काम की आग में झुलसकर छटपटाने लगा था।

उस छटपटाहट और उद्विग्नता में प्रायः वह और भी भयानक प्रतीत होता था। पशु पक्षी तथा अनेक निरीह प्राणी, उससे अपने प्राण बचाते फिरते थे।

··· ··· और अन्त में वह स्वयं भी अपने ही पाप में गलसड़कर व्याकुल हो उठा था। उसे अपने भीतर और बाहर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता था। कभी-कभी तो प्रकाश की एक क्षीण सी किरण के लिए वह बहुत लालायित हो उठता था किन्तु प्रकाश उससे कोसों दूर था।

निराशा में सिर धुनता था, कभी खीझ उठता था।

इसी तरह वह पल पल, पीड़ा का अनुभव करने लगा। यहाँ तक कि अविचार और अविवेक से जो पूँजी का ढेर अपने पास संग्रहित कर चुका था, वह भी अन्त में उसे भयानक और छलनामय जान पड़ा।

वह अपने चारों ओर मृत्यु की छाया देखकर आतंकित हो उठा !

इस दुःसह वेदना से मुक्त होने का मार्ग ढूँढते ढूँढते थक कर बैठ जाता था। सृष्टि की प्रत्येक जड़-चेतन वस्तु उसे मुँह चिढ़ाने लगती थी।

ऐसे ही पीड़ामय क्षणों में उसे देवताओं की दुंदुभियों के स्वर सुनाई देने लगे। उसकी आत्मा में एकाएक स्फूर्ति-सी अनुभव होने लगी। वह उठकर धीरे धीरे लड़खड़ाता हुआ सुख की टोह में आगे बढ़ा।

उसने देखा, भारत की पुण्यधरा के एक छोर पर प्रकाश ही प्रकाश बिखरा था। एक पुण्यमयी माता ने उस जैसे अनेक पीड़ित और सुख के खोजियों के लिए एक प्रकाश-पुंज को जन्म दे दिया था !

वह उल्लास पूरित होकर नाचने लगा !

× ×

वह प्रकाश-पुंज थे, हमारे चरित्र नायक, २४वें तीर्थंकर श्रमण भगवान् वर्धमान महावीर ! प्रभु, मति-ज्ञान, श्रुति-ज्ञान और अवधि-ज्ञान को लेकर उत्पन्न हुए थे। उनका वाह्य और भीतर का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर था।

पल पल चिन्तनशील और पग-पग पर कठोर कर्म के प्रेरक !

नर से नारायण वनने का उनका श्रमसाध्य जीवन, खुली पुस्तक की तरह स्पष्ट है। वह जीव मात्र के हितैषी थे। जाति, सम्प्रदाय इत्यादि सभी सीमाओं से मुक्त ! सव को कल्याण का मार्ग वताने वाले थे वह !

हिंसा, राग द्वेष, मोह, घृणा और वैमनस्य, मनुष्य के मन में स्थायी भाव के रूप में दिखाई देते हैं किन्तु हैं यह संचारी भाव; पर, प्रेम, परहित-भावना एवं अहिंसा, व्यक्ति के स्थायी भाव हैं।

संचारी भावों का जाला जव छँट जाता है तो यह स्थायी भाव स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। मनुष्य के अन्तर्गत, जीव निर्वेद के भाव को प्राप्त हो जाता है। और यही चरम गति है। अंग्रेजी भाषा में एक शब्द है न्यूटरल, अर्थात् निष्पक्षता के भाव को ग्रहण किये हुए। न किसी से राग, न द्वेष।

ऐसी स्थिति का जीव, निश्चित ही आत्म-स्वरूप में लीन हो जाता है।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र, मोक्ष के मार्ग हैं। किसी वस्तु या तथ्य को देखना, समझना और उस पर आचरण करना, किन्तु वस्तु या तथ्य क्या ?

वस्तु या तथ्य का सम्यक्तत्वपूर्ण विश्लेषण और आचरण; सम्यक्तत्व के बिना, न विवेक और न विशुद्ध विकास !

विकास, आत्मा के सम्यक् गुणों का !

अन्त में जब व्यक्ति सम्यक्तत्व को पूर्णतः प्राप्त होता है तो उसका कल्याण निश्चित है। उसके किसी क्रिया-कलाप में आसक्ति नहीं रह जाती।

प्रभु ने हमें अनेकान्त का दर्शन दिया।

अनेकान्त, राग-द्वेष के पूर्णतः त्याग का उपलब्धि रूप है। समभाव और अनेकान्त, एक दूसरे के पूरक और पर्यायवाची हैं। इसके विना सम्यक्तत्व कहाँ और सम्यक्तत्व के विना शुद्ध विवेक कहां ?

भगवान् का जीवन चरित्र लिखना, एक दुष्कर कार्य था। कई वर्षों से इसे आरम्भ करने के लिए सोचता रहा।

मैंने यह भी सोचा, कि प्रभु ने तत्कालीन लोक भाषा में उपदेश दिया जिससे अधिक से अधिक लोग, उनकी बात को समझ सकें, मुझे भी यह बात ध्यान में रखना आवश्यक था।

तत्कालीन लोक भाषा अर्धमागधी, आज जन-सुलभ नहीं रही। आज की राष्ट्रभाषा, हिन्दी है। अतः निश्चय किया कि सरल सुबोध हिन्दी में पद्य रचना हो।

माता सरस्वती को विनीत स्वर में पुकारा।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि, कविकुल चूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी, श्री जयशंकर प्रसाद तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि महान् पुण्य विभूतियों को स्मरण किया। उन्हें कोटि कोटि प्रणाम किये तो, भाव, छन्द और भाषा के स्वर मेरे मस्तिष्क में उभरे।

किन्तु अनेक प्रसंग ऐसे आये जिनकी मान्यता में मतभेद हैं। एकाएक कुछ भयभीत सा हुआ पर, उन्हीं शिथिलता के क्षणों में, स्वर्गीय गुरुवर्य आचार्य श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की वर्षों पूर्व दी हुई प्रेरणा ने बल दिया।

रचना आरम्भ करते समय एक विचार मस्तिष्क में कौंधा कि प्रभु परमात्मा महावीर जनपद छोड़कर जंगल में क्यों चले गए। लोक कल्याण और परहित ही तो उनका लक्ष्य था ... ... ?

बहुत विचार किया, अन्त में एक ही बात, समझ में आई; तत्कालीन समाज एक विडम्बनामय जीवन यापन कर रहा था। उस समय का मनुष्य, प्रवंचना के जाल में उलझकर रह गया और परित्राण का मार्ग दिखाने वाला, उसे दिखाई न दे रहा था।

उसकी इस भयानक पीड़ा का अनुभव करके करुणामय राजकुमार वर्धमान का हृदय काँप उठा।

उस दयामय ने परपीड़ा हरण के लिए, अपनी अधिकृत सम्पत्ति को दोनों हाथों से लुटाया। एक वर्ष तक सोने और रत्नों की वर्षा करते रहे तो भी तत्कालीन मनुष्य की दरिद्रता नष्ट नहीं हुई। उसके हृदय और मस्तिष्क में जैसे ववण्डर उठ रहे थे। वह पछाड़ें खा रहा था।

राजकुमार वर्धमान जैसा वीर पुरुष भी उसकी इस पीड़ा से विचलित हो उठा। उसने घण्टों विचार किया। उस चिन्तन में लीन होकर उसे, खाने-पीने और पहनने की सुधि तक नहीं रही।

और ... ... अन्त में कोई मार्ग न पाकर, वह सब छोड़ छाड़कर निर्जन वन में चले गये।

चिन्तन की धारा वन के शांत और निर्द्वन्द्व वातावरण में ऊर्ध्वमुखी होकर वह निकली, उनके भीतर का स्वर-संसार, मुखरित हो उठा। नस-नस और अणु-अणु निर्मल और शुद्ध-प्रबुद्ध हो गया। भयानक संकट और उपसर्ग, उन पर आए किन्तु, उन्हें शरीर की चिन्ता कहाँ रह गयी थी! वह तो केवल चिन्तनमय हो चुके थे। काया का दुःख उनके लिए नगण्य हो चुका था।

इसी तरह लगभग साढ़े बारह वर्ष तक चिन्तन करके, उन्हें केवलज्ञान की उपलब्धि हुई, जिससे ब्रह्माण्ड की कोई भी पुद्गल एवं अपुद्गल वस्तु उनके लिए अज्ञात नहीं रही।

सम्पूर्ण सत्य उनके भीतर समा गया। वह मात्र ज्ञान-पुंज बनकर संसार के कर्म-क्षेत्र में पुनः लौटे और लगभग तीस वर्ष तक लोगों को अपने केवलज्ञान के आधार पर उपदेश दिया। जीवन का दुःख दूर करने का मार्ग बताया।

प्रभु महावीर, वस्तुतः अपने ही सुख दुःख की दृष्टि से साधना के क्षेत्र में नहीं उतरे वरन् उनके हृदय में लोककल्याण और परपीड़ा हरने की बात थी। यही उनका लक्ष्य था। ठीक वैसे ही जैसे, कोई स्वर्ग की इच्छा या पुण्य-लाभ की इच्छा से किसी भूखे व्यक्ति को भोजन न करवाकर, उसकी भूख दूर करने के लिए उसे भोजन कराए। यही है धर्म और यही है साधना का मूल मन्त्र!

भगवान् महावीर की कठोरतम साधना को देखते हुए एक तथ्य और स्पष्ट होता है कि उन्होंने जान-बूझकर कष्ट और उपसर्ग को अपने ऊपर नहीं थोपा और साधना के मार्ग में जो कष्ट उन्हें झेलने पड़े, उनसे न तो वह विचलित हुए और न ही अपने भीतर कोई विवशता तथा विक्षोभ का भाव ही पनपने दिया।

यही कारण था कि जिसने भी उन्हें कष्ट पहुंचाया, वह अन्त में प्रायश्चित को प्राप्त होकर, निर्मल मन का हो गया।

यह था प्रभु वीर का हृदय और उनकी चिन्तनधारा! सबसे बड़ी बात

जो महावीर के जीवन में दिखाई देती है वह है सहनशीलता की चरम सीमा और समता की पराकाष्ठा।

इसका मूल कारण था कि उन्होंने अपने भीतर एक शाश्वत सत्य को पा लिया था कि उनका न कोई शत्रु हो सकता है और न ही उनके हृदय में किसी के लिए वैरभाव आ सकता है। यही कारण था, उनके निर्भय होने का।

जो निर्वैर होता है, वह सदैव निर्भय होता है। इसी में अहिंसा की परिभाषा निहित है।

प्रभु के जीवन को हम दर्पण मानकर, उसमें अपने आपको देखने लग जाएँ तो निश्चित ही, एक दिन हम अपने रूप को निखारने के लिए कृत संकल्प हो उठेंगे। इसी विचार से, मैंने महापुरुषों का आशीर्वाद लेकर, प्रभु का जीवन चरित्र लिखना आरम्भ किया।

यह दर्पण, जैसा भी है, आपके सम्मुख है। गुण तो प्रभु के हैं। दोष मेरे। अल्पज्ञ प्राणी हूँ, धर्म और ज्ञान की बात कैसे समझूं !

पर हाँ......यह रचना, मेरे द्वारा आविर्भूत होने जा रही है। मैं इसका कवि और रचनाकार कहलाऊँगा, यह तो एक लौकिक बात है पर, सत्य कुछ और है, यदि इस महाकाव्य को मैं, अपनी ही रचना मान लूं तो, यह पहले क्यों न हो सकी। निरन्तर, इसे रचता ही क्यों न चला गया ? बार-बार बीच में रुक क्यों गया ? इसका उत्तर यही है कि रचना मेरे हाथों ने अवश्य की किन्तु हृदय और मस्तिष्क के भीतर प्रेरक शक्ति कोई और है।

यही मानकर, मैं इस कृति को, उस प्रेरक शक्ति को ही सौंपता हूँ जिससे रचना का दम्भ मेरे भीतर न आए। दर्पण का निर्माण तो कर सका हूँ, इसमें अपने आपको कभी ठीक से क्षणभर भी निहार सकूं, यही बड़ी बात होगी।

रचना स्वान्तः सुखाय ही की है। भाषा, शैली, छन्द, अलंकार, कुछ भी तो मैं नहीं जानता। सत्गुरुओं के मुख से, जो सुना, उसी के आधार पर यह प्रयास किया है।

पूज्य सत्गुरुजन, सन्तजन, गुणीजन, इस कृति को एक अबोध बालक की तोतली वाणी समझ कर ममता की दृष्टि से देखेंगे, यही मेरे लिए बहुत है।

दो वर्ष पूर्व बम्बई में आचार्यवर्य श्रीमद्विजय धर्मसूरीश्वरजी महाराज साहब के योग्यतम शिष्यरत्न पूज्य मुनि श्री यशोविजय जी महाराज साहब ने ऐसी ही रचना के लिए प्रेरित किया किन्तु यह कार्य, मेरे लिए ऐसा था जैसे कोई बौना और दुर्बल व्यक्ति ऊँचे पर्वत पर चढ़ने की कल्पना करे। साहस नहीं हो पा रहा था। हाँ—उधेड़बुन हृदय में अवश्य थी कि सरल, लोक भाषा हिन्दी में प्रभु महावीर का जीवन चरित्र लिखा जाए, वह भी पद्य में, ताकि लोग उसे गीत की तरह गाएँ और गुनगुनाएँ। —गीत, मन में रम जाने की प्रक्रिया का नाम ही तो है।

महाराष्ट्र केसरी व्याख्यान वाचस्पति पूज्या महासती श्री प्रीतिसुधाजी महाराज साहब से भी इस रचना के लिए बहुत प्रोत्साहन मिला।

इस बीच परम पूज्या जैन कोकिला शासन प्रभाविका, प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी महाराज साहब ने भी मुझे अनेक बार, मार्ग दिखाया। मेरी भूलें सुधारीं और मुझे पग पग पर सम्हाला; इसके लिए उस करुणाशीला आर्यारत्न के प्रति मैं बहुत आभारी हूँ और उन्हीं की विदुषी शिष्या आर्यारत्न श्री मणिप्रभाश्री जी ने भी बहुत जगह मार्ग दिखाया।

और सबसे बढ़कर, परम पूज्य गुरुदेव, आचार्यवर्य श्रीमद्विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज साहब ने तो अपने दुर्बल और रुग्ण शरीर की भी चिन्ता न करके, इस रचना को घण्टों सुना। अनेक स्थलों पर, मेरी भूलें सुधारीं और अपना वरद हस्त मेरे मस्तक पर रखा। मुझे और इस कृति को वासक्षेप से सिञ्चित किया। इसी तरह सत्गुरुवर्य आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज साहब ने भी पोंडनदी में अपने रोगग्रस्त शरीर का ध्यान न करके दो-तीन घण्टे तक यह ग्रन्थ सुना। सुधार किये और आशीर्वाद दिया।

मूलत: कितने ही महापुरुषों ने मिल-जुलकर मुझ जैसे मन्दमति को भी कवि बना दिया। यह उनकी असीम कृपा हुई मुझ पर ! पंजाब प्रवर्तक पूज्य मुनि श्री फूलचन्द जी 'श्रमण' महाराज साहब ने भी बहुत प्रोत्साहन दिया। राजगृह से पूज्यवर उपाध्याय, कवि श्री अमरचन्द जी महाराज साहब ने शरीर अस्वस्थ रहने पर भी मुझे, मेरी इस रचना के लिए स्नेहपूर्ण आशीर्वाद भिजवाया। उनका यह प्रोत्साहन मेरे लिए ऐसा हुआ जैसे किसी दुर्बल व्यक्ति के शरीर में शुद्ध रक्त का संचार कर दिया जाए।

इसके अतिरिक्त भारत के अनेक परमपूज्य मनस्वी-तपस्वी महापुरुषों ने मुझे आशीर्वाद दिए जो ग्रंथ में साभार प्रकाशित किये जा रहे हैं।

तदनन्तर आभार के मुख्य पात्रों में एक स्थान प्राप्त हुआ—स्वर्गीय पूज्य श्री चौथमल जी महाराज साहब को, जिनके द्वारा रचित 'भगवान् महावीर का आदर्श जीवन' ग्रन्थ मेरे लिए पूर्णतः मार्गदर्शक बना।

यह ग्रन्थ, मेरे प्रिय मित्र और सहयोगी, श्री कपूरचन्द जी सुराणा ने लाकर दिया, इससे पूर्व मैं घटनाओं और तथ्यों के बारे में विभ्रांत था। इस ग्रन्थ ने मेरी विभ्रांति दूर कर दी। अतः मैं स्व० महाराज साहब के प्रति बहुत आभारी हूं और उस ग्रन्थरत्न को लाकर देने वाले प्रिय भाई श्री कपूरचन्द जी सुराणा के प्रति मेरे हृदय में तो प्रेम भाव है ही।

जीव और उसका विकास एवं विराट् रूप

दूरदर्शन यंत्र क्या है? जीव का पुद्गल शरीर, जिसे दृष्ट काया कहते हैं, वह हमारे सामने छवि-प्रसार यंत्र (दूरदर्शन-यंत्र) की सीमा मे लब्ध और दृष्ट रहकर सहस्रों कोस दूर बैठे हमें ऐसे दिखाई देता है जैसे उस पुद्गल काया का अस्तित्व ठीक हमारे सामने हो।

ऐसी ही बात, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गीता में प्रदर्शित विराट् रूप में उपलब्ध होती है, तो स्पष्ट हो गया कि पुद्गल काया के अतिरिक्त, भारतीय दर्शन शास्त्रों में जो सूक्ष्म काया का वर्णन आता है वह नितान्त स्पष्ट और सत्य है।

आज के वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। आध्यात्मिक और वैज्ञानिक शोध एक ही निर्णय पर स्थिर हो गया।

कोई भी स्वर, ध्वनि और स्वरूप, स्वयमेव सर्वव्यापक है। यही सर्वव्याप्ति केवलज्ञान की उपलब्धि का परम सत्य रूप बनकर तीर्थंकर के समक्ष आता है। तभी तो तीर्थंकर भगवन्त एक ही स्थान पर रहकर पूरे ब्रह्माण्ड के रूप, गुण, स्वर और ध्वनि को स्पष्ट देख और जान लेते हैं।

तभी तो जैन तीर्थंकरों ने कहा कि प्रत्येक जीव, उसी की तरह साधना करके, वैसा ही केवलज्ञानी बन सकता है। अर्थात् ईश्वर कहीं भी सातवें आसमान पर नहीं है वरन् जीव का ऐश्वर्य, उसी में निहित है। वह स्वयम् अपना भाग्य विधाता है। वह उत्थान की चरम सीमा तक पहुंच सकता है।

× ×

अनुक्रमणिका

विषय	अन्तर्गत विषय	पृष्ठ संख्या
	समर्पण	३
	परिचय	५
	साधना-सीकर	६
	ये चरित काव्य : ये कवि	८
	कवि के आत्मीय	१३
	स्मरणीय	१४
	एक प्रतिक्रिया	१६
	माहात्म्य	१७
	विनय के स्वर	१८
	स्तवन	१९
	पृष्ठ-भूमि	२०
	अनुक्रमणिका	२८
१–प्रथम सोपान		
	वातावरण	३३
	स्वर्ग से पृथ्वी की ओर	४६
	जीव और संस्कार	४८
	माता त्रिशला के गर्भ में	५७
	स्वप्नों का विश्लेषण	६३
	जन्म-कल्याणक	६८

प्रथम सोपान

वातावरण

देवकृपा, अनुकूल दैव को
आशा और निराशा पर,
मनुज जी रहा था, जीवन को—
एक अजानी आशा पर ।१।

दीन-दरिद्री जीवन पाकर
वह व्याकुल हो जाता था,
अपने भीतर नहीं झांककर—
पर से आस लगाता था ।२

अपने भीतर की ताकत को
भूल चुका था वह इन्सान,
अपनी दुर्बलता, कायरता–
से ही टूट चुका नादान।३।

कंकर पत्थर वृक्ष बेल में
ढूँढ रहा था वह भगवान्,
भ्रम में खोया, मन से हारा–
खीझ उठा था तब अनजान।४।

रक्तपात पर हुआ उतारू
अपने सुख की चाह में।
लगा बहाने खून उसी का–
जिसको पाया राह में।५।

देव मन्दिरों में बिखराया
खून अभागे पशुओं का,
झूठे लालच और लोभ में–
हनन किया उन पशुओं का।६।
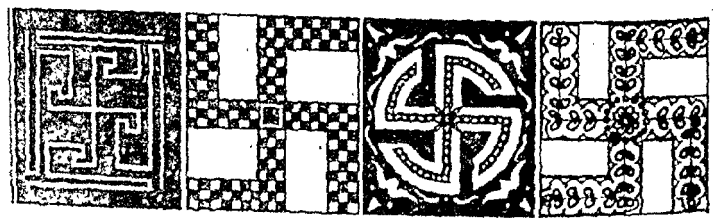
हिंसा वा अज्ञान सभी को
भ्रम में जकड़े बैठे थे,
पाप और अविवेक जीव को–
बरबस पकड़े बैठे थे ।७।

दुराचारमय कामुक जीवन
सड़ता गलता था प्रतिपल,
नरक कुण्ड में जलता भुनता–
भी अपनाए था छल-बल ।८।

अपने ही को धोखा देकर
वह प्रसन्न हो लेता था।
धर्म छोड़–मिथ्या प्रतीक को–
तुरत ग्रहण कर लेता था ।९।

पाप पुण्य का एक बवण्डर
उसे उड़ाए फिरता था,
एक लुढ़कता पत्थर बनकर–
लक्ष्यहीन वह रहता था ।१०।

अपने सुख के लिए किसी की
हत्या वह कर लेता था,
स्वर्ग प्राप्त करने तक को भी–
घोर पाप कर लेता था ।११।

अम्बर और धरातल दोनों
दानवता से कम्पित थे।
ज़हर उगलता–पवन डोलता–
सभी तत्व विष-रंजित थे।१३।

ऊँचेपन का दम्भ विश्व में
पाशविक बल था दिखा रहा,
मानव के हाथों में मानव–
शतियों से है बिका रहा।१४।
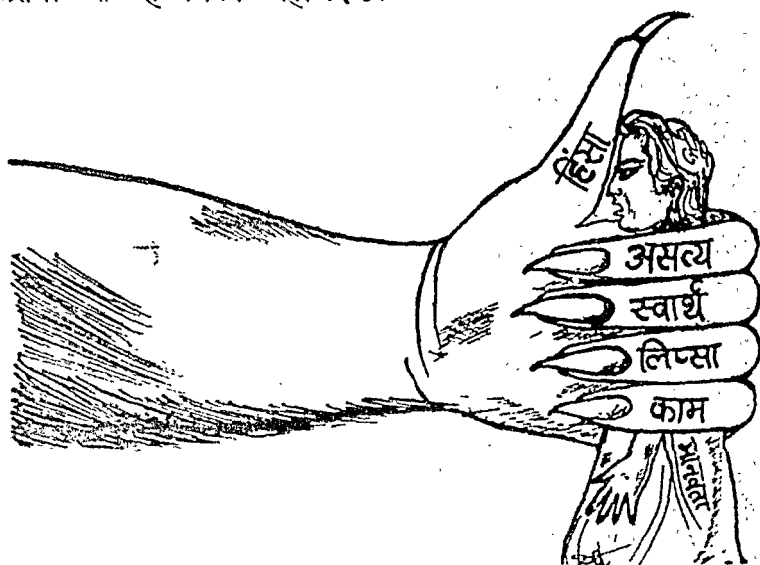
क्रोध और प्रतिशोध, धरा को
कसकर आन दबोचे थे।
जहाँ तहाँ, मानव, पशु-पक्षी—
बिलख-बिलख कर रोते थे।१५।

पशुओं से भी दीन दशा थी
शूद्र कहाने वालों की।
धज्जी-धज्जी बिखरी थी—
इन्सान कहाने वालों की।१६।

× ×

भूख-प्यास से पीड़ित नारी
नीलामी पर चढ़ती थी।
अधनंगी काया पर कोड़े—
खाती थी औ' हँसती थी।१७।

उसकी हँसी, हँसी थी या–
मजबूरी का था अट्टहास !
भीगी आँखें, पर, अधरों पर–
दिखता था वरवस करुण-हास ।१८।

उस अट्टहास के पीछे
छिपता-सा झाँक रहा था।
प्रतिशोध, विवश नारी का–
अवसर को ताक रहा था ।१९।

× ×

यह, असन्तोष की ज्वाला
धरती को झुलस रही थी।
यह प्रतिहिंसा की लपटें–
अम्बर को फूंक रही थीं ।२०।

सागर भी क्षुब्ध पड़ा था
हो गया पवन भी कम्पित।
दिनकर भी बुझा-बुझा था–
सब कुछ था जैसे थम्भित ।२१।

चिन्तित-सी सृष्टि पड़ी थी
पेड़ों पर विहग अकम्पित।
सब के सब थे मुरझाए,
था महानाश प्रतिविंवित ।२२।
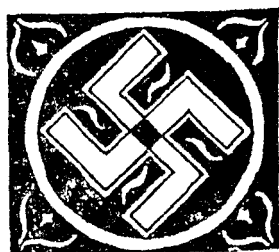
व्यापक हिंसा ने सबको
था अस्त-व्यस्त कर डाला।
नक्षत्रों की आभा पर—
पड़ गया एक पट काला।२३।

तब चीख उठा था मानव
रोता था, पछताता था।
भयभीत हुआ जड़ता से—
घुट-घुटकर अकुलाता-सा।२४।

सुख-सम्पत्ति और स्वर्ण-धन
अब लगे व्यर्थ के बन्धन।
विष से प्रतीत होते थे—
मन में उठता था क्रन्दन।२५।

तन मन तो टूट चुका था
परित्राण कहाँ से पाए!
था कौन निकट उसके तब
जो उसको राह दिखाए।२६।

उसको तो बोझिल लगती
थकती-सी अपनी काया।
दम उसका घोट रही थी–
उसकी ही अर्जित माया।२७।

विक्षिप्तप्राय वह मानव–
ठोकर पर ठोकर खाता।
पग-पग पर गिरता पड़ता–
था लहु लुहान हो जाता।२८।

अपने ही शोणित में वह
भीगा-भीगा-सा जाता।
धूमिल आँखों से उसके–
पानी था बहता जाता।२९।

उसके अन्तर ने उसको–
ही आखिर को फटकारा।
उसके अपने मानव ने–
तब, कई बार दुत्कारा।३०।
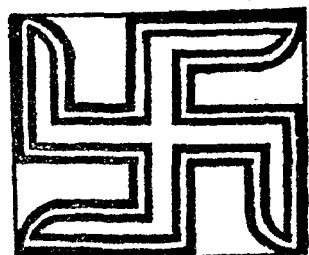
कण-कण विष व्याप्त हुआ था
काया फटती थी उसकी।
सुन पड़ती बीच-बीच में—
बस, दबे कण्ठ की सिसकी।३१।

पथ-भ्रष्ट हुआ था वह तो
उसकी चेतना दबी थी।
कुण्ठित-सा पड़ा हुआ था—
भीतर में आग लगी थी।३२।

डगमग डग डोल रहा था
हिल चुकी आस्था उसकी।
आधार रहित जीवन था—
कँपती थीं टांगें उसकी।३३।

उसने चहुँ ओर निहारा
अवलम्बन की आशा में।
पथराए लोचन बोले—
कुछ चुप्पी की भाषा में।३४।

अब शक्ति नहीं थी उसमें
क्रोधित भी हो लेने की।
मस्तिष्क भ्रान्त था उसका—
सामर्थ्य न सो लेने की।३५।

उसकी आँखों के सम्मुख
इक प्रश्न चिह्न मोटा-सा,
टिक गया अचानक आकर—
उठ बैठा वह रोता-सा।३६।
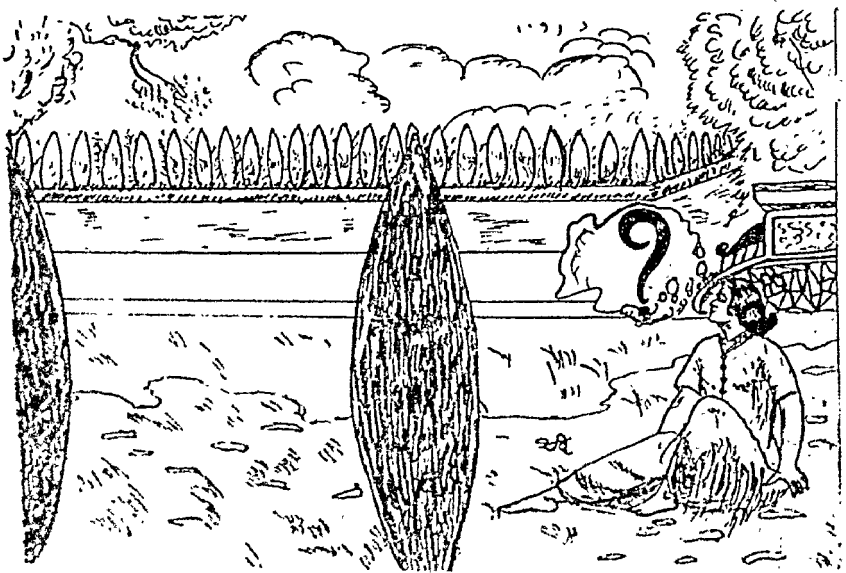
बीते जीवन का पल-पल
भयभीत किए था उसको।
छलनामय कृत्य उसी के—
बेचैन किए थे उसको।३७।

कितनों का खून बहाया
अपना ही घर भरने को।
सौ-सौ तिजोरियाँ भर लीं—
तब पड़ी पड़ी सड़ने को।३८।

दुर्दान्त बना फिरता था
अपनी ताकत के मद में।
अकड़ा अकड़ा था चलता—
अभिमान भरा वह हठ में।३९।

खोने पाने का लेखा
उभरा फिर चिन्तन-पट पर।
'अब जाना ही होगा क्या—
संचित पूँजी को तजकर'?४०?

कंकर कंकर को जड़कर
उसने थे महल चिनाए।
जड़ता को लगा सजाने—
कितने ही रंग लगाए।४१।

हीरे-मोती की सज्जा–
चाँदी-सोने से मढ़कर।
कुछ ऐसी चीज़ बनादी–
सारी दुनियाँ से बढ़कर।४२।

धरती से ऊपर उठकर
कुछ ऐसे था वह चलता।
खुशियों के झूले में वह–
फूलों के संग टहलता।४३।

सुख में डूबा था जब तक
दुख की पहचान नहीं थी।
काया को चिपका फिरता–
अपनी पहचान नहीं थी।४४।
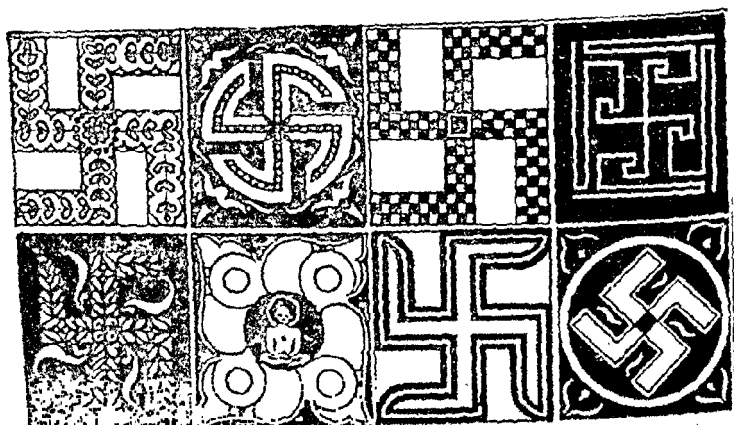
भटका भटका था जीवन
सामान्य मनुज का ऐसा।
अस्थिरता थी मानस में–
दिखता था बना तमाशा।४५।

अब दोनों हाथ खुले थे
भीतर था चला बवण्डर।
खोने पाने का विनिमय–
चलता था उसके अन्दर।४६।

मानव के मन के भीतर
इक हाहाकार मचा था।
ब्रह्माण्ड हो उठा चिन्तित–
किसने यह जाल रचा था ?४७?

जिस मानव के पौरुष ने–
सारा संसार चलाया।
वह स्वयं, पंगु-सा बनकर–
पसरा था, छोड़े काया।४८।
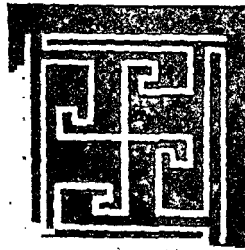
स्वर्ग से पृथ्वी की ओर

छः शती पूर्व ईसा से
पृथ्वी की यही दशा थी।
प्राणी का मूल्य नहीं था–
वर्णन से परे व्यथा थी।१।

कुछ भी न दिखाई देता
अन्धेरी दशों दिशाएं।
घिर-घिरकर और घुमड़कर–
आ पहुंची घोर घटाएं।२।

स्वरहीन हुआ था जीवन
खोया संगीत पवन का।
चेतन, जड़ बना हुआ था–
लिखकर इतिहास मरण का।३।

ऐसे पीड़ामय क्षण में
बज उठी एक शहनाई।
अमृत की बूँद टपककर—
शायद अम्बर से आई।४।

म्रियमाण-प्राण में जीवन
संचरित हुआ पल भर में।
जग उठी सृष्टि की माया—
स्वर जाग उठे क्षण भर में।५।

शीतल बयार का झोंका
आया मकरन्द छिटकता।
कुछ दूर क्षितिज पर देखा—
लज्जित उत्साह अटकता।६।

स्वर फूट पड़े झंकृत हो
फिर विवश-मौन व्रत टूटा।
धरती ने करवट बदली—
नभ से नव गायन फूटा।७।

परिवर्तन देख चमत्कृत
हो उठा सृष्टि का कण कण।
नव-परिचित सुख का अनुभव—
पाकर पुलकित था जन-जन।८।

जीव और संस्कार

भारत माता के अञ्चल में
महाकुण्ड नामक था ग्राम।
ऋषभदत्त, ब्राह्मण, तेजस्वी—
उसमें रहता था गुणवान ।१।

देवानन्दा, उसकी पत्नी
जिसमें पूरित सम्यक् ज्ञान।
वह विदुषी नारी थी ऐसी—
जिसमें कहीं न था अभिमान।२।

पति-पत्नी दोनों का जीवन
एकनिष्ठ था और अमल।
दोनों प्राणी सहकर्मी थे–
भीतर से थे पूर्ण सबल।३।

जन-जीवन में, उथल पुथल औ–'
घोर विषमता थी दिखती।
दो चलते पाटों के भीतर–
मानवता प्रतिपल पिसती।४।

शोषण और प्रपीड़न उनके
जीवन को था गला रहा।
देवानन्दा के अन्तर को–
वर्षों से था जला रहा।५।

जीव, जीव का भोज्य बना था
मूक प्राण बलि पर चढ़ते।
उनके करुण अन्त से उसके–
प्राण सदा रहते कुढ़ते।६।

स्वयम् भुक्त-भोगी थे दोनों
पीड़ामय जीवन बीता।
ऐसा जीवन जीकर ही तो–
अपना जीवन था जीता।७।
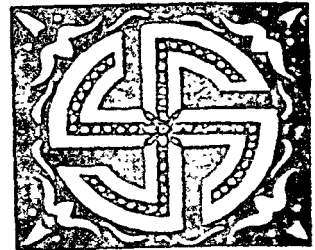
कहते हैं पीड़ा के क्षण में
मानव का अन्तर जगता।
यदि वह सहनशील रह पाए—
उसे न कुछ दुःसह लगता।८।

पीड़ा में संयत रहकर ही
मन में संवेदन पलता।
अन्धकार के एक छोर पर—
ही प्रकाश निश्चित् मिलता।९।

दोनों पति-पत्नी इच्छुक थे
विप्लव एक जगाने के।
सजग हृदय में भीषण ज्वाला—
एक बार भड़काने के।१०।

किन्तु विवशता अपनी से वह
मन ही मन थे हार गये।
अपने को असमर्थ जानकर—
अपने से ही हार गये।११।

उनकी थी यह मनोकामना
कोई महाबली आए।
कोई सत्तावान आत्मा—
तो अविलम्ब चली आए।१२।

देवानन्दा की काया में
अद्भुत परिवर्तन आया।
उसके मानस के भीतर था—
प्रभुता का गौरव छाया।१६।

उसे लगा करता था पल में
वह कुछ भी कर डालेगी।
अपनी इच्छा के बल पर ही—
सृष्टि नवल कर डालेगी।१७।

भीतर आए महाप्राण ने
अपनी आभा फैलाई।
जैसे सब कुछ बदल गया था—
मन में शक्ति नई आई।१८।

दस सप्ताह चला ऐसे ही
ऋषभदत्त के भाग जगे।
सोना बरस रहा था घर में—
खुशियों के थे साज सजे।१९।

किन्तु जीव तीर्थंकर का था
वीर भाव का एक प्रतीक।
देवानन्दा की कुक्षी में—
वह दिन-रात रहा था भींच।२०।

ब्राह्मण कुल को तीर्थंकर का—
जीव नहीं आता है रास।
तीर्थंकर का वास सदा ही—
क्षत्राणी के उर के पास ।२१।

तुरत इन्द्र ने हरिण गमैषी—
को भेजा, ब्राह्मण के घर।
बात कान में उसके कह दी—
वह पहुँचा तत्काल उधर ।२२।

उसने अपनी चतुराई से
कई यत्न करने के बाद।
बदल दिये दो माताओं के—
गर्भ, बयासी दिन के बाद ।२३।

देवानन्दा की कुक्षी का—
जीव गया त्रिशला के पास।
और जीव उसकी कुक्षी का—
पहुँचा, उस माता के पास।२४।

× ×

कुछ विद्वानों ने ऐसा स्वीकार किया
इस गाथा को तथ्य रूप स्वीकार किया।
हरिण गमैषी द्वारा गर्भ बदलने को,
परम्परागत सत्य एक स्वीकार किया।२५।

किन्तु तर्क की खरी कसौटी पर परखें
इस गाथा का विश्लेषण करके देखें।
तो कुछ तथ्य और ही सम्मुख आयेंगे,
उस पर भी चिन्तन, किंचित् करके देखें।२६।

स्वर्गलोक से चला जीव तीर्थंकर का
उसमें निहित ब्रह्मतेज, निर्विकार रहा।
ज्ञान जन्य परमाणु सबल थे उस पल में
वह तब था निर्वेद भाव साकार रहा।२७।

सात्विक भाव, स्वयं ही आकर्षित करके—
ब्राह्मण के कुल में वह, जीव लिवा लाया।
इसीलिए तो ब्राह्मण-माता के भीतर—
तीर्थंकर का द्युतिमय तेज समा पाया।२८।

किन्तु जीव में कर्म शक्ति भी निहित रही
स्वयं जूझकर पा लेने की शक्ति रही।
बुद्धि-तत्व ही केवल, उसमें नहीं रहा,
युद्ध-क्षेत्र में भिड़ने की भी शक्ति रही।२९।

× ×

ब्राह्मणत्व का ब्रह्मतेज तो, केवल ज्ञान पुन्ज होता
बुद्धि तत्व का मूल रूप में पूरित सत्व अंश होता।
किन्तु जूझने की हिम्मत तो, उसमें कभी नहीं होती,
चिंतन की सीमा का उस पर, मात्र एक अंकुश होता।३०।

यत्न और श्रम, कठिन साधना, यह क्षत्रिय कर पाता है
पराक्रमी बनकर असाध्य को, वह सम्भव कर जाता है।
वह कठोर कर्म का प्रेरक, योद्धा महाबली होता,
युद्ध-क्षेत्र में पाँव जमाकर, विजय लाभ कर जाता है।३१।

यह दुःसाहस, वीर भावना, वर्धमान में दिखती थी
ब्रह्मतेज में पगी हुई सी, वीर भावना दिखती थी।
इसी तरह का अद्भुत् मिश्रण, मुखरित, वर्धमान में था,
जिनकी छवि, दर्शक के मन में, शुद्ध वीरता भरती थी।३२।
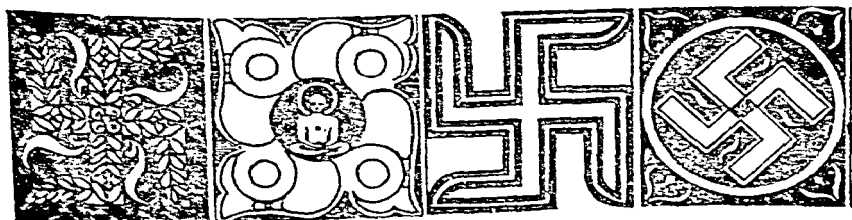
यह परिवर्तन, सहज, सत्य बनकर ही सम्मुख आता है
ब्राह्मण-कुल को छोड़, जीव, क्षत्रियकुल में आ जाता है।
अद्भुत शक्ति, जीव की मानो, या कुछ भी स्वीकार करो,
संस्कार की सबल क्रिया से, यह सम्भव हो जाता है।३३।
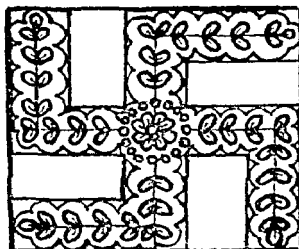
उसकी रानी की कुक्षी में
तीर्थंकर ने वास किया।
त्रिशला माता की काया में—
एक प्राण बन, श्वास लिया।३।

स्वर्णिम राज महल था उसका
सात खण्ड का भव्य भवन।
उसके सज्जित एक कक्ष में—
सोई रानी, तुष्ट वदन।४।

रत्न जटित दीपों की आभा
रंग विरंगी दिखती थी।
सोने की दीवारों पर भी—
गौरव गाथा लिखती-सी।५।

मोती की लड़ियों से गुम्फित
एक पलंग था बड़ा विशाल।
उसके चारों खूंटों पर थे—
क्रीड़ा करते शुभ्र मराल।६।

उस पर मखमल के गालीचे
कोमल कोमल बिछे हुए।
जिस पर माता त्रिशला लेटीं—
आनंदित मन लिए हुए।७।

त्रिशला रानी की पलकों में—
सपन समाए दिव्य ललाम।
अन्तिम चरण, निशा ने भरकर—
थमकर देखा दृश्य महान।८।

अर्धनिमीलित लोचन दोनों
ऐसे सुन्दर लगते थे।
नव्य कमल दो, खिल पड़ने को—
लालायित से लगते थे।१०।

ऐसी मंगल वेला में भी
त्रिशला रानी सोई थी।
पर, अपने भीतर ही भीतर–
सपन जगत में खोई थी।११।

× ×

शुक्ल-पक्ष, आषाढ़ मास की
षष्ठी बीत रही थी।
निशा रुपहली चादर ओढ़े–
पल-पल बीत रही थी।१२।

ऐसी ही अमृत वेला में
रानी देख रही थी।
खड़े हुए वनराज सिंह[१] को–
सन्मुख देख रही थी।१३।

× ×

स्वप्नों का विश्लेषण
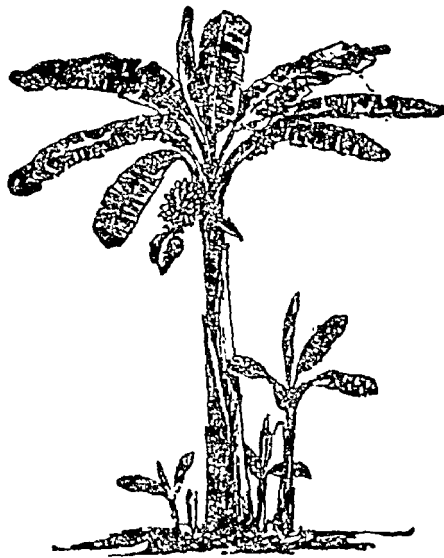
नित्य कर्म से निवृत होकर
रानी पहुँची नृप के पास।
राजा ने आह्लादित मन से–
उसे बिठाया अपने पास।१।

रानी का लावण्य देखकर
राजा मुग्ध हुए ऐसे।
जैसे खिलते हुए कमल पर–
भृंग डोलता हो जैसे।२।

रानी के गोरे माथे पर
एक कुटिल सी लट झूली।
हाथ बढ़ाकर राजा ने तब–
अपनी अंगुलि से छूली।३।

राजा ने रानी की ठोढ़ी
अपने करतल में धरली।
दोनों हाथों की अञ्जलि–
नवनीत मृदुल से थी भरली।४।

पति के छूते प्रीयकारिणी
माता ऐसे सकुचाई।
जैसे नई नवेली दुल्हिन–
प्रथम भेंट में शर्माई।५।

इससे राजा के मानस में
जिज्ञासा हो गई प्रबल।
रानी के नयनों में देखा–
जागे मन में भाव तरल।६।

तब रानी ने दृष्टि झुकाकर–
चौदह सपन सुना डाले।
अपनी वर्णन की शैली में–
चौदह जगत बना डाले।७।

× ×

सुनकर स्वप्न महारानी से
हर्षित हो भूपति बोले।
'सुनो प्रिये, ये स्वप्न सत्य हैं–'
पुलकित स्वर में वह बोले।८।

सिंह वीरता का प्रतीक है
हाथी निश्छल है होता।
पुष्ट बैल, दृढ़ता का द्योतक,
कर्मठ मंगलमय होता।९।

लक्ष्मी, खिले कमल पर बैठी
अक्षय वैभव की पहचान
दो मालाएँ–विजय, विश्व की–
चन्द्र, अचल सुख का वरदान।१०।

उदित सूर्य उत्कर्ष बताता
जिसकी दीप्ति अहर्निशि में।
फहराता ध्वज–कीर्ति पताका,
यश फैलाए, दशदिशि में।११।

ढँका कलश सौभाग्य चिन्ह है
पद्म सरोवर यश की खान।
सागर का गर्जन बतलाए–
युद्धवीर की यह पहचान।१२।

मेधावी शासक थे राजा
विद्या-वारिधि चिन्तनशील।
दो पल को वह मौन हुए—
क्षत्रिय-कुल दीपक अनुभवशील।१६।

फिर कोमल वाणी में बोले,
'रानी तुमने पुण्य किए।
तीन लोक के स्वामी तेरी—
कुक्षी को हैं धन्य किए'।१७।

× ×

इतने में सुरपति ने आकर
अपना शीश नमाया।
पति-पत्नी का पूजन करके—
उत्सव एक रचाया।१८।

यह था परम गर्भ कल्याणक
इसे मनाया सुरपति ने।
कई घड़ी तक धूमधाम से—
रंग जमाया सुरपति ने।१९।
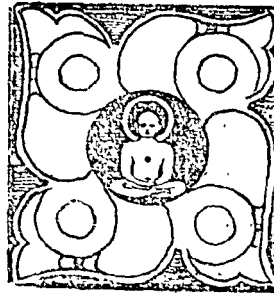
दूर-दूर तक उल्लास रहा
नौ मास, दिन सात निकला।
मंगलमय कृत्यों के बीच—
हुआ गर्भवास का अन्त।१।

चैत शुक्ल, तेरस, निखार
किया दिशाओं ने सिंगार।
उत्तर फागुन था नक्षत्र—
पधारे जिनवर तारणहार।२।

×

माता थकी प्रसव के बाद
नेत्र बन्द थे चेतन-शून्य।
सिंहासन देवों के डोले—
बजे वाद्य, विन वादक-शून्य।३।

वहीं से नीचे सिन्धु विशाल
उछाले धवल दूध की धार।
खुशी से झूम उठा इक बार–
उँडेला अपने मन का प्यार।१४।

कलश पर कलश सुरों ने डाल
किया, जिन–शिशु का था अभिषेक।
हृदय में श्रद्धा का अतिरेक–
किन्तु, सव में था पूर्ण विवेक।१५।

वाद में मणि–मुक्ता से युक्त
दिया पहना सुन्दर परिधान।
देव के मन–मोदन के हेतु–
इन्द्र ने स्वयं किया था गान।१६।

अन्त में राजमहल को लौट
सुलाया, शिशु को माँ के पास।
चले सुर, अपने अपने लोक–
हृदय में ले सुख का आभास।१७।
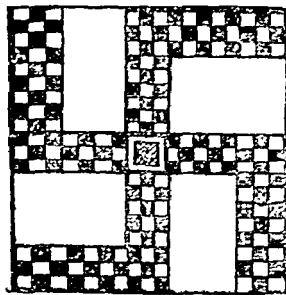
उनकी दिव्य दृष्टि से कुछ भी
गुप्त नहीं था, ऐसे ज्ञानी।
नक्षत्रों से क्रीड़ा करते—
कुछ थे ऐसे अन्तर्यामी ।३।

उनसे सम्बोधित हो नृप ने
लक्षण, एक एक बतलाया।
शिशु के तन पर शंख, चक्र वा—
सरसिज, धनु का चिह्न दिखाया।४।

सुत के दाएँ पदतल में
बना था चिन्ह, सिंह का एक।
'वीरता इस बालक की देख–
झुकेगा ही मानव प्रत्येक।५।

यह तो अखिल विश्व के स्वामी
बालक-तीन लोक के नाथ!'
नतशिर होकर पण्डित बोले–
'राजा, यह अनाथ के नाथ'!६!

बाल-लीला

प्राण-धन झूलें पलना में
वधाई गाती ललनाएँ।
नृत्य की लय पर थिरक रहीं—
गुँजाती आंगन ललनाएं।१।

सिहरते वीणा के थे तार
फूटती उनसे इक झंकार।
कण्ठ से निकले मधुर अलाप—
झूमता था सारा संसार।२।

नगर में तन्मय थे सब लोग
भाग्य से आया यह संयोग।
हो रही वैभव की बौछाड़—
उछलते गाते थे सब लोग।३।

राज्य में शेष नहीं था दुःख
विदा हो गया शोक व रोग।
खेत लहलहा उठे भरपूर—
बढ़ा पल-पल राजा का कोष।४।

निरखकर होती प्रतिपल वृद्धि
हर्ष से फूल उठे पुरजन।
दिया तब, 'वर्धमान' शुभनाम—
हुआ नगरी का संवर्धन।५।

× ×

लाड़ला करता था खिलवाड़
उमड़ता माता का था प्यार।
पिता के नयनों में दिखता—
लहरता, ममता का था ज्वार।६।

× ×
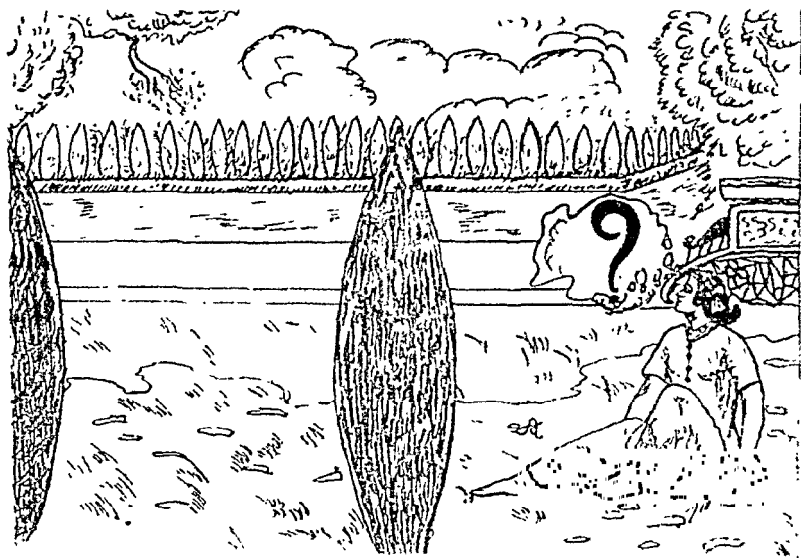
बालक, सौम्य, अचञ्चल, शांत
सिन्धु-सा तरल और गम्भीर।
निरन्तर माँ को रहा निहार–
रही हो जो उद्विग्न अधीर।१७।

शिशु था तीन ज्ञान का धारक
भीतर से संवेदन-शील।
समझकर माँ के मन की बात–
हुआ फिर सत्वर क्रीड़ाशील।८।

चलाकर छोटे–छोटे हाथ
पाँव से सभी खिलौने ठेल।
मचल-सा उठा पालने में–
रही माँ, देख, पुत्र का खेल।९।

बढ़ा फिर माता का अनुराग
उठाया उसे बढ़ाकर हाथ।
चूमकर उसके कोमल गाल–
और फिर नन्हे-नन्हे हाथ।१०।

लिया फिर छाती से चिपकाय
मधुर-सी लोरी मुँह से बोल।
पुत्र ने बाल सुलभ क्रीड़ा में–
दी, माता की कवरी, खोल।११।

तभी ले आई तैल सुगन्धित
औ' उबटन इक सखी पुरानी।
शिशु की चंचलता को देख—
अचानक हँस दी बड़ी सयानी।१३।

शिशु ने ऐसा पांव चलाया
छूटी कर से उबटन-दानी।
लुढ़का तैल, बिखरती गंध—
देखकर हँसी जोर से रानी।१४।

हँसी हँसी में मीठी झिड़की
खाकर शिशु ने होंठ सिकोड़े।
माता ने चिपकाया उर से—
हँसकर दासी ने कर जोड़े।१५।

तब फिर सौम्य रूप अपनाया
माता ने अभिषेक कराया।
दासी ने कपड़े पहनाए—
माँ ने अपना दूध पिलाया।१६।

धीमे–धीमे लोरी गाकर
सुत को अपने संग लिटाया।
चुम्बन करते करते माँ ने–
उसको कई बार दुलराया।१७।

× ×

विभु थे बाल रूप में यद्यपि
पर थे तीन लोक के त्राता।
तीर्थंकर बन जन्म लिए थे–
वह थे जग के भाग्य-विधाता।१८।

नेत्र बन्द करते ही उनको
क्या दीखा–यह तो वह जाने!
चौंक उठे, तो माता त्रिशला–
संग सहम-सी उठी अजाने।१९।
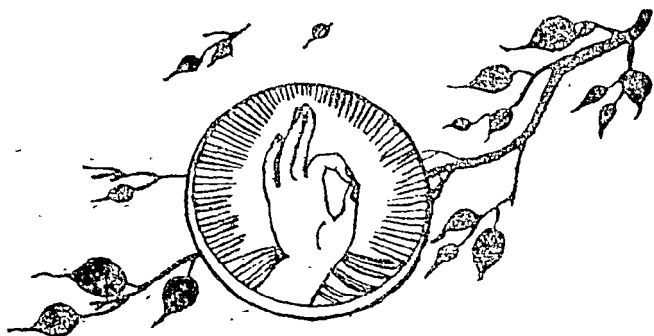
हँसकर बोले पिता, "ठहर जा
पुत्र, तुम्हें देता हूँ हार।
आज मंगाकर व्यापारी से–
एक और दूँगा उपहार।२५।

एक एक मणि, ऐसी द्युतिमय
जड़ी रहेगी उसमें प्राण।
नभ के नक्षत्रों से बढ़कर–
होगी जगमग, ज्योतिर्मान"।२६।

पल पल जुड़कर घड़ियाँ बीतीं
घड़ियाँ मिलकर, दिन बीते।
वर्धमान, नन्दीवर्धन के–
प्यार भरे–बरसों बीते।१।

वर्धमान छोटेपन से ही
नन्दी का आदर करते।
कुछ भी कहते बड़े बन्धु से–
मर्यादित, सादर कहते।२।

नन्दीवर्धन भी निहारते
पल पल उनकी राह सदा।
क्रीड़ा करते और विचरते–
बढ़ती मन में चाह सदा।३।

एक साथ खाते थे दोनों
एक साथ वे थे सोते।
राम-लखन-से भाई दोनों–
संग–संग ही थे होते।४।

× ×

मद मस्त हाथी पर विजय

एक बार थे दोनों भाई
व्यस्त खेल में घर पर ।
हाहाकार सुना तो दोनों—
पहुँचे ऊपर छत पर ।५।

एक बावला हाथी कब से
ऊधम मचा रहा था ।
नगर-जनों को कुचल-कुचलकर—
चिथड़े उड़ा रहा था ।६।

सैनिक थे भयभीत, भागते
अपनी जान बचाते ।
काल-रूप हाथी से डरकर—
अपना आप छिपाते ।७।

चीत्कार, पुरजन का सुनकर
वर्धमान उठ भागे ।
नन्दी चौंके, अस्त-व्यस्त से—
ज्यों सपने से जागे ।८।

जब तक पहुंचे मुख्य द्वार पर
छोटे कुँवर नहीं थे ।
घुड़सवार, हाथी वा पैदल—
सारे वहीं खड़े थे ।९।

बड़े कुँवर चढ़ गये अश्व पर
लिए हाथ में भाला ।
जब तक पहुँचे बीच चौक में—
हाथी गया संभाला ।१०।

वर्धमान बैठे थे उस पर
कुछ ऐसे मुस्काते ।
गुपचुप कोई बात कान में—
हाथी को समझाते ।११।

वर्धमान का सभी नगरजन
जयजयकार गुँजाते ।
आस-पास एकत्रित होकर—
फिर फिर शीश नमाते ।१२।

ऐसे संकट की वेला में
कैसा शौर्य दिखाया।
जान हथेली पर लेकर—
जनता को आन बचाया।१५।

राजा, रानी चिन्तित दोनों
भागे—भागे आए।
हँसते देख राजकुँवरों को—
फूले नहीं समाए।१६।

पूरी बात जानकर रानी
हर्षित स्वर में बोली—
"मेरी कुक्षी उज्ज्वल करदी!"
वह क्षत्राणी बोली।१७।

"तेरे मन में इतनी ममता
तू है सबका त्राता।
पुरजन तेरे–तू पुरजन का–
जीओ दोनों भ्राता ।१८।

जीना उसका, जो औरों के
दुख हरने को जीता।
वह शिव है, जो अमृत तजकर–
स्वयं गरल है पीता" ।१९।

वर्धमान ने आगे बढ़कर
माँ को शीश झुकाया।
माँ ने उसे उठाकर अपने–
सीने से चिपकाया ।२०।

राजा की आँखें भीगी थीं
मन में जगी तरंगें।
ऐसे वीर पुत्र को पाकर–
पूरी हुईं उमंगें ।२१।
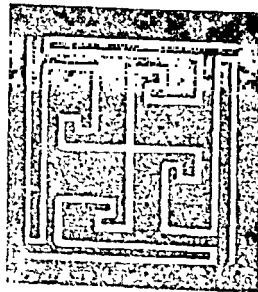
[illegible] घटना

प्रभु जंगल में खेल रहे थे
अपने कुछ मित्रों के साथ।
कूद फांदकर ऊपर नीचे—
छिपे वृक्ष के पीछे नाथ।१।

मित्र खोजते उन्हें दूर तक
उसी जगह पर आ पहुँचे।
अगले ही पल चढ़े वृक्ष पर—
सबसे ऊँचे जा पहुँचे।२।

तभी भयानक सर्प कहीं से
आ पहुँचा बल खाता-सा।
चला वृक्ष की ओर झपटता—
तज फुँकार जलाता-सा।३।

नाग देखकर बालक दौड़े
कुछ अचेत-से हुए तभी।
कुछ वृक्षों से कूद पड़े, पर—
ऐसा देखा नहीं कभी।४।

चढ़ा जा रहा नाग पेड़ पर
वर्धमान नीचे सरके।
बुला रहे थे मित्र जनों को–
ऊँचे स्वर में हँसकर के।५।

ऊपर बढ़ते हुए सर्प के
फण पर प्रभु ने पाँव धरा।
लगे दबाने अंगूठे से–
नाग बोझ से हाय मरा।६।

तीन लोक के स्वामी उसको
हँसते–हँसते दबा रहे।
पल-पल अपना बोझ बढ़ाकर–
उसको नीचे दबा रहे।७।

हार गया वह सर्प अन्त में
पल में अन्तर्धान हुआ।
अगले ही पल, धरती पर था–
एक देव म्रियमाण हुआ।८।

झुका-झुका सा और डोलता
हाथ जोड़कर खड़ा हुआ।
लगा हाँफने बुरी तरह से–
और काँपता खड़ा हुआ।९।

वर्धमान कोमल वाणी में
धीमे–धीमे थे बोले,
"होता शक्तिवान वह प्राणी–
जो निर्बल का ही हो ले।१४।

देव योनि में भी विवेक को–
कभी नहीं जो है तजता।
वह मानव बनने पर निश्चित्–
कर्म–चक्र से है बचता।१५।

सबके सुख-दुख का वह साथी
जो परहित ही है करता।
मानव-जीवन से उठकर वह–
भव-सागर से है तरता"।१६।

अपना जीवन, धन्य किए फिर
देवलोक का वह वासी।
हो विनीत फिर शीश झुकाकर–
गया स्वर्ग का अधिवासी।१७।

वर्धमान कोमल वाणी में
धीमे–धीमे थे बोले,
"होता शक्तिवान वह प्राणी–
जो निर्बल का ही हो ले।१४।

देव योनि में भी विवेक को–
कभी नहीं जो है तजता।
वह मानव बनने पर निश्चित्–
कर्म–चक्र से है बचता।१५।

सबके सुख-दुख का वह साथी
जो परहित ही है करता।
मानव-जीवन से उठकर वह–
भव-सागर से है तरता"।१६।

अपना जीवन, धन्य किए फिर
देवलोक का वह वासी।
हो विनीत फिर शीश झुकाकर–
गया स्वर्ग का अधिवासी।१७।

वर्धमान कोमल वाणी में
धीमे–धीमे थे बोले,
"होता शक्तिवान वह प्राणी–
जो निर्बल का ही हो ले।१४।

देव योनि में भी विवेक को–
कभी नहीं जो है तजता।
वह मानव बनने पर निश्चित्–
कर्म–चक्र से है बचता।१५।

सबके सुख-दुख का वह साथी
जो परहित ही है करता।
मानव-जीवन से उठकर वह–
भव-सागर से है तरता"।१६।

अपना जीवन, धन्य किए फिर
देवलोक का वह वासी।
हो विनीत फिर शीश झुकाकर–
गया स्वर्ग का अधिवासी।१७।

बोला हाथ जोड़कर दोनों,
"देवलोक का वासी हूँ।
उच्छृंखल हूँ, मन्द बुद्धि हूँ
क्षमा करो–विश्वासी हूँ।१०।

नीच, दुष्ट, ओछे कुभाव का
सेवक, दण्डित होता है ।
वह अपने कृत्यों से स्वामी–
ताड़ित–पीड़ित होता है ।११।

चला परखने, नाथ आपको
तुच्छ बुद्धि मैं, आप सबल ।
'महावीर' हो परम दयामय–
मैं हूँ पामर, नीच निबल" ।१२।

स्वर्गिक देव गिरा चरणों में
नयनों से बहता था जल।
स्वामी-सेवक एक हो गये–
कैसे मोहक थे वे पल।१३।
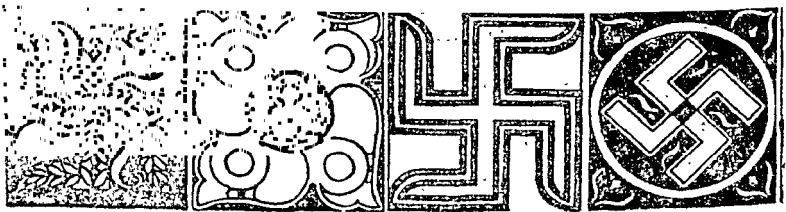
वर्धमान कोमल वाणी में
धीमे–धीमे थे बोले,
"होता शक्तिवान वह प्राणी–
जो निर्बल का ही हो ले।१४।

देव योनि में भी विवेक को–
कभी नहीं जो है तजता।
वह मानव बनने पर निश्चित्–
कर्म–चक्र से है बचता।१५।

सबके सुख-दुख का वह साथी
जो परहित ही है करता।
मानव-जीवन से उठकर वह–
भव-सागर से है तरता"।१६।

अपना जीवन, धन्य किए फिर
देवलोक का वह वासी।
हो विनीत फिर शीश झुकाकर–
गया स्वर्ग का अधिवासी।१७।
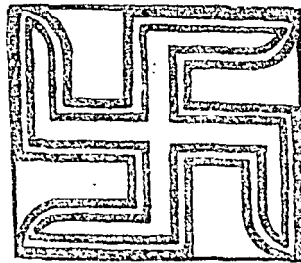
तृतीय सोपान

तरुणावस्था

तरुणाई ने, हौले हौले पाँव बढ़ाए
सिमट रहा था, शैशव चंचल।
चला सूर्य, अम्बर की चोटी छूने—
पसर गया आभा का अंचल।१।

विकसित-पुलकित अंग, हृदय में साहस
हीरे-सी जगमग थी काया।
नख-शिख में अनुपात, सुघरता छवि में—
सिहर उठी, यौवन की माया।२।

कुञ्ज-वीथि से निकले तो कलियाँ मुस्काईं
कुल—वधुओं ने घूंघट खोले।
यौवन में मदमाती सुन्दरियाँ शरमाईं—
अकुलाईं पर, होंठ न खोले।३।

ऐसा निखरा—उभरा यौवन, वर्धमान का
खुशबू—सी फैली नगरी में।
तत्पर थी कोई भी तरुणी भर लेने को—
वह सुगन्ध मन की गगरी में।४।

× ×

माता त्रिशला

माता के मन की क्या पूछो, वह क्षत्राणी
वीर पुत्र की जननी थी।
दुनियां की सम्पदा, पुण्य से उसके—
केवल उसकी, अपनी थी।५।

वह जिधर विचरती, उधर प्रजाजन जाते
हर्षित जयकार लगाते।
वर्धमान से वीर पुत्र की मां को—
शत—शत आभार जताते।६।

जिज्ञासा

जितना पढ़ा सके पण्डित-जन पढ़ा चुके
नहीं मिटी जिज्ञासा ।
पढ़ा किताबी ज्ञान, न मन भर पाया—
उलटे वढ़ी पिपासा ।१।

इसीलिए एकांत ढूँढकर घण्टों
कुछ चिन्तन करते रहते ।
मैं कौन, कहाँ से, क्या करने को आया—
हर पल विचारते रहते ।२।

जितना लीन हुए, उतना ही उलझे
कहीं अटक थी मन में ।
एक अन्धेरा पट-सा आगे पाया—
यही खटक थी मन में ।३।
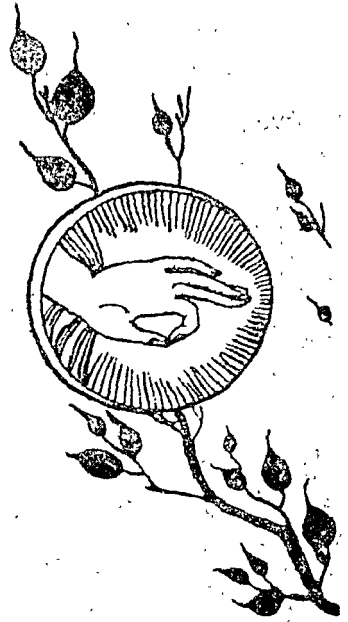
कभी-कभी झुँझलाया करते मन में
क्या उत्तर नहीं मिलेगा ?
जीना मरना—मरना जीना केवल
क्या वस यही चलेगा ?४?

विविध विचार

ऊहा पोह मची थी मन में
प्रश्न एक पर एक चढ़ा ।
मरकर जीना–जीकर मरना–
प्रत्यञ्चा पर बाण चढ़ा ।१।

चढ़ा रहे तो व्यर्थ लगे, पर–
छूट जाय तो घात करे ।
ऐसा टँगा हुआ–सा जीवन–
अपने ही को मात करे ।२।

जीवन वह, जो चलता जाए
बहता जाए, पानी-सा ।
कुछ प्यासों की प्यास बुझाकर–
बीत जाय, तूफ़ानी-सा ।३।

किन्तु अर्थ है उस जीवन का
शक्ति बटोरे पग-पग पर ।
उसी शक्ति से निबल जनों को–
संकट-मुक्त करे भू पर ।४।

अन्तर्मन में खोज-खोजकर
सम्यक्तत्व को प्राप्त करे।
पूरी शक्ति लगाकर अपनी–
ज्ञान-पिपासा शाँत करे ।५।

यह शरीर, मिट्टी का घर है
इसकी ममता कौन करे।
पल-पल गलती, ढलती काया–
इसे पकड़कर कौन मरे ।६।

रोग, भोग से–दुःख, शोक से
यह जर्जर होती रहती।
भरसक बचने के उद्यम में–
स्वयं सत्व खोती रहती ।७।

भीतर की अनन्त सत्ता को
भूल गया यह जीव अजान।
भीतर भरी सुगन्ध उसी के–
वन में खोजे मृग नादान ।८।

उसे जगाने चिर-निद्रा से
कुछ उद्यम करना होगा।
चेतन तत्व स्वच्छ करने को–
कुछ परिश्रम करना होगा ।९।

यह कठोर दुःसाध्य कर्म है
साधन भी एकत्रित हों।
तभी साधना, हो सकती है–
सूत्र सभी एकत्रित हों।१०।

मोह वासना की माया से
सदा बचे रहना होगा।
योग-शोक, समदर्शी होकर–
एकचित्त सहना होगा।११।

तभी हृदय के एक कोण से
जगी मोह की प्रबल तरंग।
माता त्रिशला के मानस की–
सम्मुख आई एक उमंग।१२।

माता उनको मोह जाल में
उलझाने को तत्पर थी।
ब्याह रचाने वर्धमान का–
वह मन ही मन सत्वर थी।१३।

वर्धमान-सा जामाता हो
चाह जगी भू-पतियों में।
आपस में इक होड़ लगी थी–
सामन्तों धनपतियों में।१४।

कुछ ही दिन में आ पहुँचे थे
धीरे-धीरे चित्र अनेक।
संग चले आए थे चारण–
गुण-वर्णन करते सविवेक।१५।

एक एक कुँवरी थी ऐसी
कन्या, रत्न सरीखी-सी।
गुण-स्वभाव, सुन्दरता उसकी–
अद्भुत वा अनदेखी-सी।१६।

चलते-चलते पहुँचा चारण
'समरवीर', गुणशाली, का।
जिसके बल की महिमा गाता–
जन-जन था वैशाली का।१७।

थी वसन्तपुर नगरी उसकी
वह पृथ्वीपति उसका था।
बड़े-वड़े राजाओं से भी–
बढ़कर गौरव उसका था।१८।

उसकी कन्या परम सुन्दरी
नाम 'यशोदा' उसका था।
साँचे में ही ढला हुआ ज्यों–
अंग-अंग ही उसका था।१९।

गौर वदन पर नयन मृगी-से
उस पर लम्बे-काले केश।
सुरभित यौवन, परम अछूता—
जगमग था सारा परिवेश।२०।

ऐसा रूप अवर्णित होता
जगदम्बा-सा दिव्य अनूप।
आभा मण्डल सिमट गया था—
काठ-फलक पर होकर मूक।२१।

चित्रकार था चतुर कलाविद
उसका शिल्प अनूठा था।
उसकी कूची में पूरित था—
मौलिक भाव अटूटा-सा।२२।

चारण की वाणी का जादू
शत-शत मुख मे फैल गया।
जैसे पिचकारी मे सौरभ—
दिग्-दिगन्त में फैल गया।२३।

माता त्रिशला और पिता के
मन में चाह जगी प्रतिपल।
'समरवीर' की दिव्य सुता में—
निहित लगा, सौभाग्य अचल।२४।

उसकी गुण गरिमा का वर्णन
सुनकर चारण के मुख से।
सभी हुए इच्छुक तुरन्त ही–
उसके सम्भावित सुख से।२५।

आत्म-द्वन्द्व

महावीर के मन के भीतर
एक द्वन्द्व था छिड़ा हुआ।
उसके आगे एक प्रश्न था–
कब से आकर खड़ा हुआ।१।

परिमित से जीवन में कैसे
समाधान हो प्रश्नों का।
और हृदय भी नहीं दुखे–
अपने कृत्यों से, अपनों का।२।

माता-पिता उसे बन्धन में
कसकर बाँध रहे थे।
परिणय के उस मोह-जाल में–
कसकर बाँध रहे थे।३।

दो नैया में एक साथ ही
कैसे पाँव धरें वह!
गहरी नदिया, इसी तरह से–
कैसे पार करें वह?४?

चिन्तन करते करते उनके
मानस में इक बात उठी।
गर्भकाल के अपने प्रण की—
बात हृदय में जाग उठी।५।

'जब तक माता-पिता रहेंगे
वह उनके विपरीत नहीं।
किसी भाँति भी उनको दुख दें—
इसमें उनकी जीत नहीं'।६।

अपने उस प्रण को मन ही मन
तोला कितनी बार तभी।
तब समक्ष कर्तव्य देखकर—
स्वीकारा तत्काल तभी।७।

माता-पिता की इच्छा-पूर्ति

वर्धमान की स्वीकृति पाकर
महलों में खुशियाँ छाई।
राजा-रानी की आँखें भी–
अहा, खुशी से भर आई।१।

माता त्रिशला सुख स्वप्नों में
एक बार ऐसी खोई।
उसके मन की माया जागी–
जो वर्षों से थी सोई।२।

उसके अंग–अंग में बिजली–
जैसी फुरती समा गई।
एक खुशी की लहर हृदय में–
उठकर उसको जगा गई।३।

पल भर में यह समाचार
वायु की गति से फैल गया।
वर्धमान की शादी का सुख–
आंखों में था तैर गया।४।

क्षत्रिय-कुण्ड ग्राम के वासी
घर-घर उत्सव मना रहे ।
बालक, वृद्ध, युवा नर-नारी—
सारी नगरी सजा रहे ।५।

रात हुई तो घर-घर दीपक
कोटि-कोटि जगमगा उठे ।
रंग बिरंगे—जगमग करते—
रत्नदीप खिलखिला उठे ।६।

मंगलमय गीतों की धुन पर
नाच रही थीं सुन्दरियाँ ।
पाँवों की थिरकन पर बिखरीं—
नव-यौवन की पंखुड़ियाँ ।७।

ऐसी सुखमय चली पवन थी
डोल उठा पत्ता-पत्ता ।
एक बार को डोल गई थी—
मन के संयम की सत्ता ।८।

गृहस्थ में

आ पहुंची ससुराल यशोदा रानी जब
नगर-जनों ने पलकों पर था उठा लिया।
माता त्रिशला ने बढ़कर अगवानी की–
उसको अपने भीतर जैसे समा लिया।१।

दुल्हन का जो रूप निहारा दुल्हा ने
हृदय उछलकर, जैसे मिलने को भागा।
एक घड़ी ऐसी थी आई जीवन में–
सागर, नदिया में मिलने को था भागा।२।

टूट गई थी डोर वासना जीत गई
मधुर मिलन में घड़ियाँ कितनी बीत गईं।
पंख लगाकर प्यार-गगन में विचर गया–
थी अनंग की सत्ता जैसे जीत गई।३।

काया में काया के घुलने की वेला
आलिंगित हों–जैसे धरती और गगन।
एक अलौकिक सुख का पुलकित भाव प्रवल–
जिसमें पुरुष और नारी हों प्रेम-मगन।४।

वासना और विवेक—संघर्ष

एक कोने में हृदय के वासना थी कुलबुलाती
मध्य में तन के नियन्त्रण की धुरी थी डगमगाती।
उबलता-सा गर्म लावा, चेतना-पट को झुलसता—
एक कम्पित और डगमग भावना थी सुरसुराती।१।

मानवी संवेदना, हृत्-पिण्ड में शूलें चुभाती
वासना की मृदुल उष्मा—और पग पग पर लुभाती।
छिड़ गया संग्राम, कोलाहल मचा था—
चेतना थी—वेदना में फड़फड़ाती।२।

तन गई थी अस्थि-मज्जा और नस-नस
द्वन्द्व में पड़कर हुआ वह वीर बेबस।
चल रही रस्साकशी थी देर से—
गर्व से ऐंठा हुआ था आज मन्मथ।३।

श्वास फूला—वक्ष धड़का जा रहा था
युद्ध में दुश्मन पछाड़े जा रहा था।
उभर आईं, भाल पर उसके शिराएँ—
था डटा, पर श्वास उखड़ा जा रहा था।४।

× ×

अन्त में ताकत समूची जोड़कर
मोह का घेरा, समूचा तोड़कर।
भिड़ गया इक बार वह साधक अनोखा,
शत्रु के उस चक्रव्यू को फोड़कर।५।

सिंह-सा झपटा—कुचलता शत्रुओं को,
वासना को और उसके बन्धुओं को।
बाद में तन को झटकता जा खड़ा
तोड़ता तब मोह के उन तन्तुओं को।६।

हो गया निर्णय अचानक युद्ध का
शत्रु का तो श्वास ही अवरुद्ध था।
जीतकर साधक—भयानक युद्ध में—
मौन था निष्काम और प्रबुद्ध-सा।७।

माता-पिता का आत्म-चिन्तन
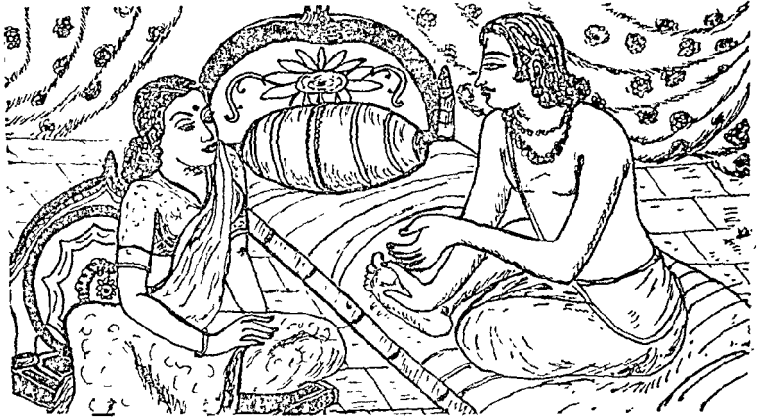
जीवन के सुख का काल, न जाने कब बीता
यौवन के धन का हुआ खज़ाना कब रीता ?
राग-रंग में जीवन सारा बीत गया,
आज बुढ़ापे ने काया को है जीता।१।

राजपाट, घर-बार और सन्तान सभी
अपनी अपनी जगह, टिके थे, ज्यों के त्यों।
किन्तु शक्ति, काया की, मुख को मोड़ गई—
साधन एवं साध्य सभी थे ज्यों के त्यों।२।

योग, भोग, जाते जाते जो छोड़ गया,
वह पूंजी पाथेय नहीं बन सकती थी। .
आगे राहें, टेढ़ी-मेढ़ी, उलझी थीं,
टूटी फूटी देह नहीं चल सकती थी।३।

सब कुछ किया, मोह में पड़कर अब तक रे
यह माया का जाल भयानक ही निकला।
इसमें फंसे, न छूट सके थे जीवन भर—
बचकर इस दलदल से कौन कभी निकला?४?

थोड़ा भी तो समय नहीं मिल पाया था
क्षण भर को भी चिन्तन कर पाते इतना।
लेखे-जोखे वाली पोथी बन्द पड़ी थी—
कभी न सोचा, इसका भी खोलें पन्ना।५।

लेखा-जोखा, कर्म और उसके फल का
जीवन के इन शेष पलों में ही सूझा।
जब हो गए अशक्त अंग, सारे तन के,
नयन बुझे तो पड़ा रहा सब, अनबूझा।६।

अब तो कर्म शक्ति ही विदा हुई कब से
हाथ-पाँव भी हिला नहीं अब सकते थे।
तब कैसे घाती कर्मों का क्षय होगा—
कर्म-चक्र से कैसे वह बच सकते थे।७।

इन्हीं विचारों में डूबे राजा रानी
पलंग छोड़, नीचे धरती पर बैठ गये।
नयनों से अविरल जल-धारा बहती थी,
ध्यान-मग्न हो, अलग-अलग थे बैठ गये।८।

धीरे-धीरे राजमहल के सब वासी
आए औ-' चुपके से बाहर चले गये।
नन्दी के अन्तर में एक बवण्डर था—
बोले, "वर्धमान, हम दोनों छले गये"।३।

वर्धमान ने अपने भीतर जान लिया था
माता-पिता लिए संथारा बैठे थे।
जीवन भर का लेखा जोखा करने को—
वह दोनों चुपचाप धरा पर बैठे थे।४।

× ×

नन्दीवर्धन शोकाकुल थे खड़े हुए
कई घड़ी तक कोई, शब्द नहीं बोला।
"माता-पिता न जाने क्यों कर रूठ गये,
यह रहस्य, क्यों पहले गया नहीं खोला।५।

वर्धमान तो पहले ही सन्यासी है
इन दोनों का केवल मुझे सहारा था।
ये भी अलग-अलग होकर हैं मौन पड़े,
ऐसा होगा, पहले नहीं विचारा था।६।

कितना अच्छा होता जो पहले मुझको
अपने मन का भेद समूचा कह देते।
मैं तो इनका आज्ञाकारी सेवक हूँ,
जो भी कुछ था साफ साफ ही कह देते।७।

धीरे-धीरे राजमहल के सब वासी
आए औ-' चुपके से बाहर चले गये।
नन्दी के अन्तर में एक बवण्डर था—
बोले, "वर्धमान, हम दोनों छले गये" ।३।

वर्धमान ने अपने भीतर जान लिया था
माता-पिता लिए संथारा बैठे थे।
जीवन भर का लेखा जोखा करने को—
वह दोनों चुपचाप धरा पर बैठे थे ।४।

× ×

नन्दीवर्धन शोकाकुल थे खड़े हुए
कई घड़ी तक कोई, शब्द नहीं बोला।
"माता-पिता न जाने क्यों कर रूठ गये,
यह रहस्य, क्यों पहले गया नहीं खोला ।५।

वर्धमान तो पहले ही सन्यासी है
इन दोनों का केवल मुझे सहारा था।
ये भी अलग-अलग होकर हैं मौन पड़े,
ऐसा होगा, पहले नहीं विचारा था ।६।

कितना अच्छा होता जो पहले मुझको
अपने मन का भेद समूचा कह देते।
मैं तो इनका आज्ञाकारी सेवक हूँ,
जो भी कुछ था साफ साफ ही कह देते ।७।

अब भी वर्धमान जो मेरी बात सुनें,
राजा बनकर स्वयं, मुझे छुट्टी दे दे।
मैं तो इनके बिना न कुछ भी कर सकता,
मुझको भी इनके पीछे जाने दे दे।८।

× ×

राजा-रानी का स्वर्गारोहण

नृप सिद्धारथ और रानी त्रिशला माता
ध्यान-मग्न जो हुए न फिर आँखें खोली।
सन्थारे में प्राण-विसर्जित कर डाले,
दोनों काया पड़ीं धरा पर अनबोली।९।

समाचार, राजा रानी के स्वर्गवास का
दिक्‌दिगन्त में अगले ही पल पहुँच गया।
रोता और कलपता नगरी का जन-जन—
राजमहल के आंगन में था पहुँच गया।१०।

अन्तःपुर के करुण स्वरों का चीत्कार
सुनकर तो मन टुकड़े टुकड़े होता था।
नन्दीवर्धन कई घड़ी से थे अचेत—
वैशाली का बच्चा-बच्चा रोता था।११।

आकुल-व्याकुल थी सुदर्शना बहन बिलखती
रोते रोते उसकी आँखें सूज गई थीं।
केश नोचती, खम्भे से थी सिर टकराती—
आँखें उसकी जवाकुसुम-सी फूल गई थीं।१२।

वर्धमान ने आगे बढ़कर उसे सम्हाला
गले लगाकर, तरह-तरह से था पुचकारा।
और प्यार से हाथ फेरकर उसके सिर पर—
अस्त-व्यस्त होता सा उसका वेष सँवारा।१३।

× ×

वर्धमान का आत्म-चिन्तन

"इस शरीर को धारण करने वाला प्राणी
स्वयं, कर्म का बन्धन करके दुख पाता है।
और देह जब, प्राणहीन हो जाया करती,
सम्बन्धित इससे हर प्राणी दुख पाता है।१४।
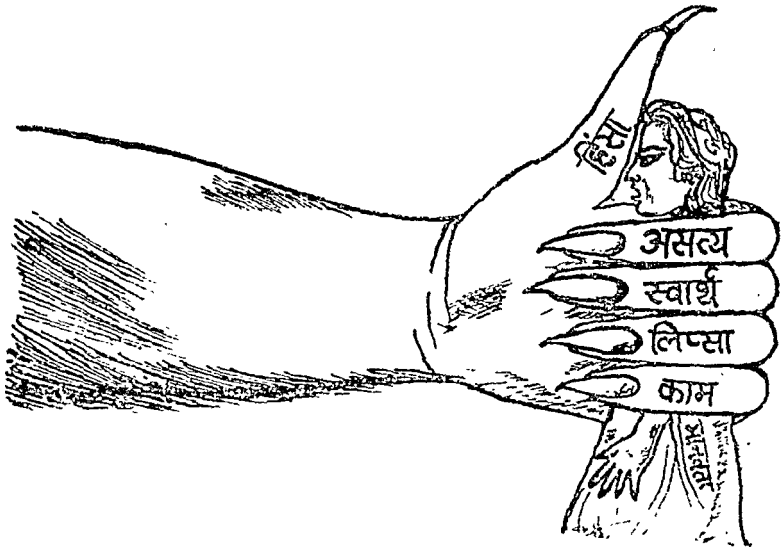
यह जीने मरने का लम्बा एक सिलसिला
कब तक चलता रहे, न कोई इसको जाने।
अन्तहीन इस मरने जीने के चक्कर को—
किसी तरह भी कोई तो इसको पहचाने।१५।

कोई तो इस नश्वर दुख सुख की माया से
बच सकने की राह खोजकर आगे आए।
और मोह के महाभयंकर भंवर जाल से,
छुटकारा पा सकने का रास्ता बतलाए।१६।

यह वियोग की पीड़ा, छाती फाड़ रही है
ममता, माता और पिता की दंश मारती।
पल-पल उनकी याद उभरकर आ जाती है,
अन्तर की गहराई में ज्वाला सुलगाती।१७।

यह जीवन भी एक पहेली है अनबूझी
इसे अन्त में श्रम करके, सुलझाना होगा।
कोई राह निकल ही आएगी चिन्तन से,
किन्तु मोह, ममता को तजकर जाना होगा।१८।

राज-पाट, वैभव, सत्ता का आकर्षण
इसे छोड़कर दूर कहीं चल देना होगा!
भाई, पत्नी, बहन, सगे सम्बन्धी जन को—
एक बार ही झटक फटक चल देना होगा।१९।

यह भाड़े का घर है, नश्वर देह हमारी
जीव इसी के भीतर छिपा हुआ बैठा है।
नाशवान, इस हाड़-मांस के पुतले को वह–
रखवाला, स्वीकार किए बैठा है।२०।

किन्तु, जानता नहीं भ्रमित है, जाने कब से
यह काया ढह जाएगी गीली मिट्टी-सी।
यह बालू का महल, गिरेगा पलक झपकते,
निकल जायगी, इसके पाओं से मिट्टी भी।२१।

आएगा भूचाल, बवण्डर जाग उठेंगे
जीवन जीने का संयोजन, धरा रहेगा।
नहीं चलेगा कोई भी फिर कहीं बहाना,
जग का सारा ठाठ, यहीं पर पड़ा रहेगा।२२।

इससे अच्छा है, पहले ही छोड़ा जाए
जो कुछ भी है पास, तुरत ही बाँटा जाए।
मूल्यवान है एक एक पल इस जीवन का,
हो जाए व्यतीत, न फिर यह माँगा जाए।२३।

बहुत देर तक लीन, इसी अन्तर्चिन्तन में
वर्धमान थे मौन, इसी अन्तर्मन्थन में।
वह भविष्य का पूरा क्रम निश्चित् करके ही–
कर बैठे संकल्प एक दृढ़, अपने मन में।२४।

दीक्षा के लिए बड़े भाई से अनुमति मांगना

नन्दीवर्धन के पास पहुँचकर विनय भाव से
अपने मन की बात कही, कोमल वाणी में ।
संयम चिन्तन का पन्थ, ग्रहण करने को उनसे—
मांगी अनुमति, शांत और कोमल वाणी में ।१।

सुनते ही यह बात बड़े भैया के भीतर—
करुणा का जग उठा ज्वार, आँखें भर आईं ।
चीत्कार कर उठे, न कुछ भी मुख से बोले,
द्रवित भाव से उठे, और बाहें फैलाईं ।२।

शब्द न मुख से फूट रहे थे, कण्ठ भर गया
वर्धमान को बाहों में भरकर ली सिसकी ।
सारी काया काँप रही थी, ज़ोर ज़ोर से,
तोड़-फोड़ भीतर को, निकली बरबस हिचकी ।३।
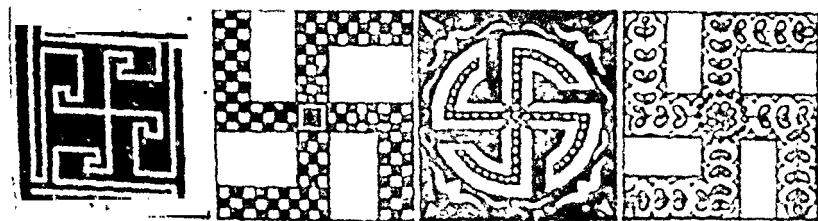
वर्धमान, अपने भैया के गले लगे ही
संयत वा कोमल वाणी में फिर से बोले,
"यह मन का उद्वेग, दुःख का एक मूल है,
इसे हृदय में पोषित करना परम भूल है ।४।

इसी दुःख का उन्मूलन करने को मैंने
राह खोजकर, बात कही है प्यारे भैया !
किन्तु आपको किसी तरह की पीड़ा देकर,
डग न भरूंगा, चाहे कुछ हो मेरे भैया" !५!

वर्धमान की बातें सुनकर शान्त हुए कुछ—
नन्दीवर्धन, कँपते से स्वर में वह बोले,
"तुम ही मेरी कर्म-शक्ति हो मेरे भैया",
अटक-अटककर रुद्र कण्ठ से आखिर बोले ।६।

"माता-पिता गये स्वर्ग में अभी-अभी हैं
अभी हृदय में यही शूल चुभता रहता है ।
तू जाएगा, निश्चित् है, यह बात तुम्हारी,
यही दूसरा शूल, सदा चुभता रहता है ।७।

मेरा कैसा भाग्य कि तुमसा भाई पाकर—
भी एकाकी जीवन, अपना बिता रहा हूँ ।
राजमहल में रहकर तापस बने हुए हो,
मैं रोते रोते ही घड़ियाँ बिता रहा हूँ ।८।

मत जाओ तुम दूर, यहाँ से, मेरी मानो
घर में ही रहकर, जो करना चाहो कर लो!
मेरे रहते, तुम्हें नहीं कोई भी चिन्ता—
रहते हुए यहीं पर अपने मन की कर लो" !९!

वर्धमान बोले फिर अपना शीश झुकाकर,
आज्ञा मिलने पर ही आगे कदम धरूंगा।
किन्तु हृदय में जैसे कोई कोंच रहा है—
बीत रहे पल को मैं कैसे पकड़ सकूंगा ?१०?

जो पल बीत रहा है, पीछे नहीं मिलेगा
जीवन कितना शेष बचा है, कौन बताए ?
आने वाले पल की आशा करके बैठें,
यदि वह पल ही इस जीवन में कभी न आए।११।

तो अवसर यह, कभी न मिल पाएगा भैया
जन्म जन्म के लिए भटकता रह जाऊँगा।
चौरासी के फेरे में ही पुनः उलझकर—
मानव भव में शायद कभी न आ पाऊँगा।१२।

मेरे मन की पीड़ा को यदि समझ सको तो
मुझे नहीं रोकोगे, मेरे अपने पथ से।
मैं अपनी पीड़ा का कारण खोज रहा हूँ,
मुझे न खींचो बन्धु, साधना के सत्पथ से।१३।

नन्दी मौन रहे—ना कोई उत्तर सूझा
तब बोले फिर वर्धमान, निर्णायक स्वर में।
"दो वर्षों तक सेवा करके छुट्टी लूँगा,"
यही शब्द बोले, तब मीठे-मीठे स्वर में।१४।

"भैया, मैं सेवक हूँ, इन चरणों का निश्चित्
दो वर्षों के बाद, मुझे जाना ही होगा।
अपने मुख से एक बार तो स्वीकृति दे दो,
मुझे उलझती गुत्थी को सुलझाना होगा" ।१५।

नन्दी भैया ने सीने पर पत्थर धरकर
एक सांस में वर्धमान की बात मान ली।
वर्धमान ने नीचे झुककर चरण छुए औ–'
जीवन भर संयत रहने की बात ठान ली।१६।
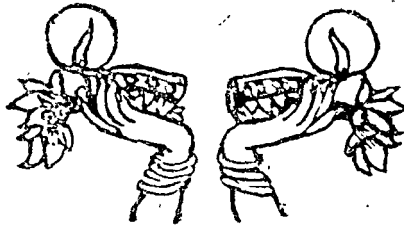
महलों में योगी

वर्धमान महलों में रहकर, भी योगी थे
जीवन जीते सहज, नहीं भोगी थे।
पल-पल उर में एक वेदना होती थी,
काया से पर, रहे सदा नीरोगी थे।१।

× ×

चारों ओर लगा था जमघट वैभव का
सोना चांदी और विश्व के वैभव का।
बहन-बन्धु की ममता हृदय लुभाती थी,
आकर्षण, पर रहा मुक्ति के वैभव का।२।

वह आकर्षण धीरे-धीरे जीत गया
इसी तरह था एक वर्ष भी बीत गया।
श्रम से निर्मित था जीवन का साज़ नया,
उभरा अन्तर में उसके संगीत नया।३।

× ×

जीवन को हर पहलू से था जान लिया
दु:ख और सुख के कारण को जान लिया।
जोड़ जोड़कर रखना ही पीड़ा देता,
इस रहस्य को ठीक ठीक पहचान लिया।४।

जो वैभव, दर्शक की आँखें चुँधिया दे
वह वैभव, अपना भी मित्र नहीं होता।
सर्प मदारी से लिपटा क्रीड़ा करता,
वह विषधर तो उसका मित्र नहीं होता।५।

अवसर मिलते ही तत्काल दंश लेता
अपने रक्षक का जीवन भी हर लेता।
ऐसा ही स्वभाव, विभव का होता है,
घोट घोट कर प्राण, धनी के हर लेता।६।

वह वैभव जो पर-पीड़ा का हरण करे
परहित के पथ पर, इच्छा से चरण धरे।
वह अपने स्वामी का मंगल है करता,
सेवक बनकर, उसका पोषण-भरण करे।७।

× ×

दान की पराकाष्ठा

ऐसी ही उद्दाम भावना, वर्धमान में जागृत थी
पीड़ित की पीड़ा हरने की पुण्य भावना जागृत थी।
हाथ खोलकर मुक्त हृदय से, लगे बाँटने करुणाकर,
स्वर्ण, धान, धन, अतुल-सम्पदा, जो भी उनके अधिकृत थी।८।

उनका दान बढ़ा जितना ही, उतना उनका कोष बढ़ा
गया अभाव, और पुरजन के, मन में था सन्तोष बड़ा।
दान ग्रहण करने वाला ही कोई याचक नहीं रहा,
वर्धमान के भण्डारों में, सब कुछ यूँ ही भरा पड़ा।९।

विदा की वेला

मगसिर का शीतल प्रभात था
राज महल था सिकुड़ा सा।
वर्धमान का शयन कक्ष भी,
नीरवता में जकड़ा था।१।

खड़ी यशोदा रानी गुपचुप
अद्भुत लक्षण थे मुख पर।
पल पल प्रश्न उभरते मन में,
लोचन आते थे भर-भर।२।

"जीवनधन जायेंगे वन में
एकाकी तज कर मुझ को।
हाथ पकड़ कर लाए थे घर,
एक समय पर यह मुझ को।३।

ऐसे ही जाना था तजकर
तो क्यों मुझको ले आए?
तो क्या मेरे अन्तर्मन में,
टीस जगाने को लाए?४?

यह पुरुषत्व पुरुष का कैसा
हाथ झटक कर जाने में।
कैसे अब मैं जी पाऊँगी,
प्राण चले अनजाने में।५।

कौन कहे इस बैरागी को
नारी अर्धांगी होती।
पाप पुण्य, यश अपयश में भी,
वह समान भागी होती।६।

यह कैसा है न्याय पुरुष का
निर्णय स्वयम् सुना डाला !
हरा भरा जीवन मेरा तो,
पल में भस्म बना डाला !७!

मेरे लिए महल का जीवन
शूल भरा है पीड़ा-स्थल ।
बिन स्वामी के नरक तुल्य है,
नागों का है क्रीड़ा स्थल ।८।

प्रतिक्षण दंश मारते रह रह
सम्भावित वियोग के व्याल
लगता है – जैसे प्राणों में,
ढलता हो पिघला प्रवाल ।९।

कण कण जलता और पिघलता
काया तिल तिल चिटक रही ।
अंग अंग जैसे कटते हों,
हड्डी हड्डी तिड़क रही ।१०।

भीतर घुटन–श्वास है उखड़ा
जीवन लंगड़ाने को है ।
नारी, नर से विलग हो रही,
सब कुछ ही जाने को है" ।११।

× ×

शोक-तप्त विक्षुब्ध भाव में
देख, यशोदा को व्याकुल।
निकट पहुँचकर वर्धमान ने,
देखे उसके नयन सजल।१२।

झिलमिल आंसू की छाया में
नारी का विद्रोह मिला।
अहो-समर्पित भाव आज तो,
प्रश्न चिह्न ही बना, मिला।१३।
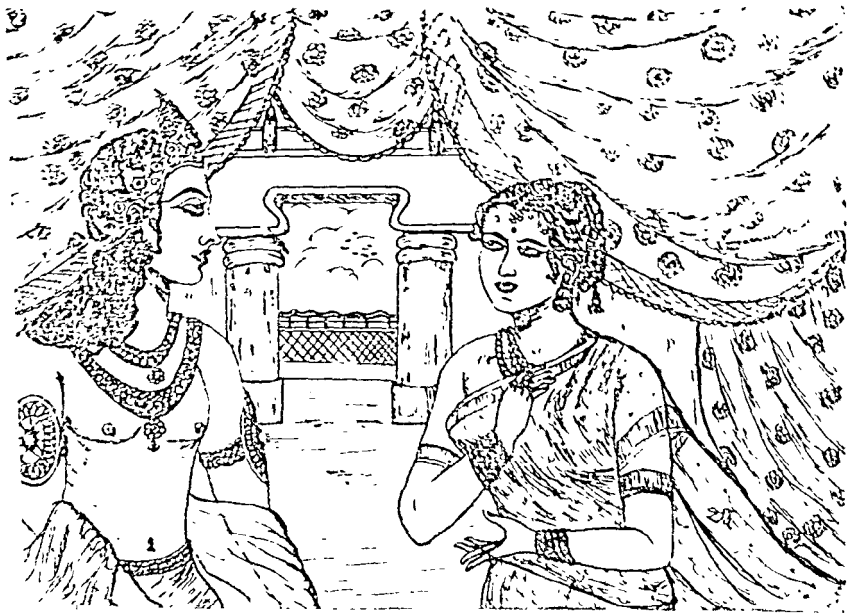
एक बार तो महावीर भी
भीतर से थे काँप उठे।
उन्हें लगा, जैसे भीतर में,
कहीं अटक कर श्वास रुके।१४।

किन्तु उन्होंने तन्तु हृदय के
मुट्ठी में थे बांध लिए।
संयम की उद्दाम शक्ति से,
सभी शत्रु थे जांच लिए।१५।

तत्क्षण उनके नयन युगल से
फूट पड़ी अमृत धारा।
सम्मुख विफरी महाशक्ति के,
लोचन में उतरी धारा।१६।

देख यशोदा, उन नयनों की
शांत स्निग्ध औ–' सौम्य छटा।
हिली डुली पल भर को ही वह,
भीतर दिव्य प्रकाश जगा।१७।

वर्धमान की सौम्य दृष्टि में
सब प्रश्नों का था उत्तर।
पत्नी की पीड़ा हरने को,
महापुरुष वह था तत्पर।१८।

नयनों की भाषा में प्रभु ने
कितना ही कुछ कह डाला।
बिना हिलाए अधरों को बस,
मन ने—मन को कह डाला।१९।

चमत्कार था उस साधक का
नारी शांत हुई पल में।
बुझी आग—जो लगी हुई थी,
सागर के शीतल जल में।२०।

वर्धमान का मन था निश्छल
परहितकारी जीवन था।
पीड़ित की पीड़ा हरने को,
अर्पित उनका जीवन था।२१।

दिव्य समर्पण अपने पति का
देख यशोदा पुलक उठी।
भीतर से उसके मानस में,
श्रद्धा उमड़ी-छलक उठी।२२।

चतुर्थ सोपान

आत्म-निर्णय के क्षण

मन में एक विचार रहा
शुद्ध भाव, अविकार रहा।
वर्धमान के भीतर जागा,
एक नया संसार रहा।१।

पीड़ा में कोई पलता हो

लंगड़ाकर कोई चलता हो

उसका सम्बल बनकर जीना,

जो दुख में सड़ता गलता हो ।२।

○

करुणा

सम्भव हो तो दीन दुखी को
सम्भव हो तो पतन-मुखी को,
अपने दोनों हाथ लगाकर,
तुम उबार लो, नरक-मुखी को।१।

मन में करुणा का निवास हो
विपुल शक्ति का सतत वास हो,
तो कल्याणक, बनकर विचरो,
घर घर में, तेरा निवास हो।२।

अहंकार प्राणी का दुश्मन
मान, लोभ, मद, मादक दुश्मन!
जो प्राणी इनके वश होता,
वह अपना ही घातक दुश्मन।३।

भला करे, बदला बिन चाहे
पुण्य मिले उसको अनचाहे।
पाप-पुण्य से रहे अछूता,
सुख सम्पदा मिले बिन चाहे।४।

रवि, प्रकाश, दुनियां को देता
विधु अपना अमृत भर देता।
उसको सारी दुनियां झुकती,
जो अमूल्य आभा भर देता।५।

× ×

सहनशीलता

जो फूलों की डाली नोंचे
उसको फूल न बदबू देते।
जो उनको मुट्ठी में मसले,
वे उसको भी खुशबू देते।६।

धरती को चीरें फाड़ें हम,
वह धरती खाने को देती।
लकड़ी को झोंके ज्वाला में–
वह पकवा भोजन को देती।७।

रोटी गर्म तवे पर फूले
वह जैसे है हर्षित होती।
भूख भगा देती भूखे की–
यही सोचकर हर्षित होती।८।

यदि मानव भी सहनशील हो
अपकारी पर दयाशील हो।
तो वह पीड़ाओं में पलकर,
सुख पा लेता पुण्यशील हो।९।

जलधि-पवन, द्रुम यश के भागी
परहित के हैं, वे अनुरागी।
बिन मांगे ही देते जाते,
वे उपकारी हैं बड़भागी।१०।

यदि मनुष्य में ये गुण आएँ
तो उसको सब शीश झुकाएँ
पर-हितकारी के चरणों में
सब श्रद्धा के फूल चढ़ाएँ।११।

दयावान दानी जो होता
मानरहित मानव जो होता।
क्षमाशील होने से सबका-
प्रिय सखा-मन भावन होता।१२।

सत्य जानकर स्वीकृत करना
यह विवेक से आता है।
सत्य, साधना—सत्य बोलना,
यह निर्भीक बनाता है।१।
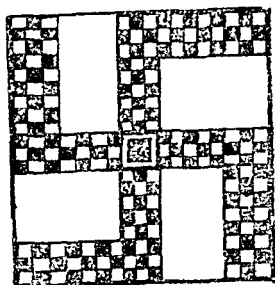
किन्तु सत्य को धारण करना
असिधारा पर चलना है।
इस कड़ुवे अमृत को पीना,
अंगारों पर चलना है।२।

यह दुस्साध्य कर्म है दिखता
कोई बिरला, साध सके!
जिसका घोर नियंत्रित जीवन—
वह वाणी को बाँध सके।३।

शब्द निरर्थक नहीं निकलता
जिसके मानस में बल हो।
सत्य बोलते नहीं झिझकता,
जिसमें कहीं नहीं छल हो।४।

प्राण जाय पर झूठ न बोले
वह पावन, वह मुक्त पुरुष।
टंगा रहे शूली पर चाहे,
झूठ न बोले महापुरुष।५।

यह जीवन जीने की क्षमता
अमर बेल सी बढ़ जाती।
सत्व, जड़ों में जिसके रहता
वह तो सूख नहीं पाती।६।

यही सत्य है, सत्व रूप में
जो सबके भीतर रहता।
छिपा हुआ मिथ्यात्व-तिमिर में
यह बरबस दबता रहता।७।

मानव की यह घोर निर्बलता
जो इससे बचता रहता।
इससे आँख चुराकर कायर,
लज्जित हो, छिपता रहता।८।

सत्याचरण कभी मानव से
पश्चाताप न करवाता।
सत्य बोलकर कोई मानव,
कभी नहीं है शर्माता।९।

सत्य मनुज की कड़ी परख है
इस पर वही खरा उतरे।
जिसका हृदय खरा सोना हो,
तपकर वही खरा उतरे।१०।

हिंसा

मानव के भीतर की लघुता
जब भी प्रकट हुआ करती।
मानव के अन्तर की पशुता,
हिंसक रूप लिया करती।१।

× ×

तब यह धरती कंप कंप जाती
सबके प्राणों पर आ बनती।
निर्बल छिपे छिपे हैं फिरते,
हा-हत्या की बाजी लगती।२।

करुणा, थकी-थकी-सी लगती
धर्म पोथियों में दब जाता।
हिंसा की भीषण ज्वाला से,
प्राणी, मुश्किल से बच पाता।३।

धरती के चप्पे-चप्पे पर
लोहू की धारा वह जाती।
फुँक जाता मानव का मानस,
पल-पल, प्रतिहिंसा मुस्काती।४।

डाह, लोभ, अभिमान पनपता
शोषण, जनजीवन में बढ़ता।
चोर, हृदय में घर कर जाता,
जीवन में आ जाती शठता।५।

पग पग पर जीवन रुक जाता
सीधी-सादी राह, उलझती।
सूझबूझ मानव की जाती,
मन की उलझन नहीं सुलझती।६।

चिन्तन में बाधा पड़ जाती
तन-मन रोगी-सा हो जाता।
मन में आग सुलगती रहती,
मानव महाशिथिल हो जाता।७।

जीवन को संयम तज जाता
मानव, भटका-भटका लगता।
बेलगाम घोड़ा बन जाता,
पग-पग पर झटका-सा लगता।८।

हिंसा, जीवन को झुठलाती
उथल पुथल जीवन में लाती।
पल भर चैन न लेने देती,
मन में अन्धड़ सा भर जाती।९।

हिंसक, बुद्धि हीन हो जाता
अन्धेरे में, है खो जाता।
वह अपने पर खीझा करता,
सुख की नींद नहीं सो पाता।१०।

●

अहिंसा

निर्मलता मन में आ जाती
पाप रहित जीवन हो जाता।
दया, उमड़कर मन में भरती,
जीव, अहिंसामय हो जाता।१।

यह अचण्ड, भावना हृदय की
मानव को बलवान बनाती।
अन्तर की आभा से भरती,
जीवन को सर्वांग सजाती।२।

जीव, अहिंसक बनकर जीता
उसमें रहता है संवेदन।
सुख से जीता, सुख पहुँचाता,
उससे सुख पाता, जड़-चेतन।३।

यही अहिंसा, मन का बल है
यही परम शक्ति का उद्गम।
यही साधना का है सम्बल,
संयम का है साधन अनुपम।४।

संयम

संयम होता है मन का बल
संयम में जिसको विश्वास।
इसको धारण कर लेने से,
यह मनुष्य का करे विकास।१।

× ×

एक निष्ठ, दृढ़ता का द्योतक
विश्व-विजय का है साधन।
यह सीढ़ी ऊँचे चढ़ने की,
उन्नति का है यह कारण।२।

जीत लिया जिसने इस मन को
वह जीवन को जीत चुका।
निकल चुका जो इन्द्रजाल से—
वह सबका मन जीत चुका।३।

संयम के ऊपर की सज्जा
या संयम का हो परिवेश।
यदि संयम, न रहे मन पर तो—
व्यर्थ रहे तापस का वेष।४।

संयम, पूर्ण नियन्त्रण करता
मन, वाणी औ—' काया पर।
इस पथ का पन्थी कर लेता,
डटकर शासन, माया पर।५।

फिर उसकी काया सध जाती
वाणी और हृदय सध जाता।
उसके मुख से फूल टपकते,
वह सबका पूजित बन जाता।६।

इच्छा से निवृत्त, वासना-मुक्त
मनुज निष्काम रहे।
ब्रह्मचर्य की शक्ति-
प्रबल, अविराम रहे।१।

×

आत्म-नियंत्रण, स्वयमेव है होता
जीवन, ऊपर को उठता।
हृदय और मस्तिष्क स्वयम् ही,
एक तार में बंधता।२।

× ×

पहले शून्य हृदय में होता
फिर भरती, अनुभूति।
चिन्तन-पट निर्मल हो जाता,
जगती एक विभूति।३।

बाह्य विश्व अन्तर से मिलता
अणु-अणु झंकृत होता।
जीवन, परम शांति, अनुभव कर—
तुरत चमत्कृत होता।४।

नस नस में सन्तुलन बैठता
भीतर का स्वर सधता।
हृदय और मस्तिष्क समन्वित,
होकर सम स्वर, भरता।५।

तापस के भीतर, तप का बल
और शांत-रस होता।
क्रोधहीन, अभिमान-विरत वह—
सदा एक रस होता।६।

देखा है सूखी डाली पर
खिला फूल मुस्काता।
जिसमें रस की एक बूंद है,
वह न सहज मुरझाता।७।

तापस के भीतर रस-सागर
सदा प्रवाहित होता।
शीत, उष्णता, बाह्यबवण्डर,
से न प्रभावित होता।८।

देशकाल, परिस्थिति की सीमा
बांध न उसको सकती।
किसी तरह की कोई पीड़ा–
उसे न विचलित करती।९।

× ×

दुःख, क्लेश, कलह से बचकर
अशरीरी बनकर जीता।
राग, द्वेष, माया से बचकर,
सदानन्द होकर जीता।१०।

रोग, शोक, भयग्रस्त न रहता
अपने में स्वतन्त्र रहता।
अन्तर्दृष्टि हुआ करता वह,
सदा एकतन्त्र रहता।११।

आस्था

हृदय और मस्तिष्क, बिन्दु पर केन्द्रित होते
एक दृष्टि से, एक तथ्य पर चिन्तन करते।
यही 'आस्था', कहलाती है, मानव मन की—
इसी शक्ति से हृदय-सिन्धु का मन्थन करते ॥१॥

इसी शक्ति से धीरे-धीरे साधक बढ़ता
यही प्रेरणा, बनकर तन्मयता, दे देती।
यह मन की एकाग्र शक्ति को सञ्चित करके—
कर्म क्रिया में तारतम्यता है, भर देती ॥२॥

शुष्क धरातल पर भी अंकुर उपजा देता
यदि जल टिका रहे पर, विखर न जाए।
शंका रहित धार, चिन्तन की मन में उपजे,
परम शक्ति भर देती, यदि वह विखर न जाए ।।३।।

आत्म-साधना का साधन, स्वीकार करो या,
कार्य-सिद्धि की पहली सीढ़ी इसको मानो।
इसके विना, न भाव, हृदय में सञ्चित होते,
इसे कर्म की प्रेरक-शक्ति, प्रथम ही जानो ।।४।।

इस शरीर के सभी अंग मस्तिष्क चलाता
और हृदय, इसमें पल-पल नव भाव जगाता।
काट-छाँट कर पा लेता, निष्कर्ष एक जव,
तो जीवन, निर्धारित लक्ष्य, एक कर पाता ।।५।।

इसे आस्था या निष्ठा की संज्ञा दे दो
इसके विना नहीं, उपलब्धि हुआ करती है।
इसके विना न चरण, धरातल पर टिक पाते,
यह मानव की अन्तर्शक्ति हुआ करती है ।।६।।

क्रोध

मन में अंगार चटकते हों,
ज्वाला सी बुझबुझकर जगती।
अन्तर को भुँजकर एक बार,
तब क्रोध भावना है जगती।१।

भीतर है, आँधी-सी पलती
चिन्तन, अवरुद्ध हुआ करता।
अन्धेरे में ठोकर खाता,
मानव-मन क्षुब्ध हुआ करता।२।

भीतर का वाष्प, क्रोध बनकर
मुख से लपटें-सी तज देता।
परवश-सा होकर, बुद्धि-तंत्र,
बस तीव्र उष्णता भर देता।३।

पत्थर, चिरमौन युगों से हो
सागर तट पर, निश्चल रहता।
वह भी संघर्षण से विचलित—
होता, तो अग्नि-वमन करता।४।

संघर्षण, भावों का मन में
प्रत्येक जीव के है होता।
इसका सन्ताप विवश करता;
तो प्राणी, विचलित है होता।५।

भीतर का महाकाय दानव
अंगड़ाई लेकर उठ जाता।
तो दुर्बल मन, पछाड़ खाकर,
है स्वतः झुलसने लग जाता।६।

पशुता, मानव में, जग जाती
उसका व्यवहार बिगड़ जाता।
आचारहीन, सन्तुलन रहित–
होकर मस्तिष्क बिखर जाता।७।

नस-नस में ऐंठन सी बढ़ती
काया में तिड़कन सी होती।
भीतर लावा-सा बह जाता,
पीड़ामय जकड़न सी होती।८।

ऐसे ही पल में तो मानव
निज बुद्धितत्व को खो देता।
आवेश भरा कुछ भी करता,
सब एक बार में खो देता।९।

यह क्रोध, वेदना का कारण
जीवन में आग लगा देता।
औरों को चला, जलाने तो,
अपने को भस्म बना लेता।१०।

आसुरी शक्ति, भरती तन में
भूकम्प हृदय में आ जाता।
यह प्रबल वेग तूफ़ानी-सा—
बिरला ही वीर पचा पाता।११।

समता
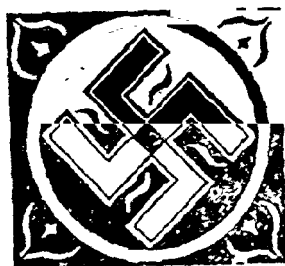
समता है पावस की फुहार
तपते उर को शीतल करती।
जल रही क्रोध से काया को,
पल में छूकर शीतल करती।१।

अनुशासन–सत्ता, यह मन की
जिस मानव पर शासन करती।
उसका मन द्वन्द्वहीन रहता,
वह स्निग्ध भाव पावन भरती।२।

समता करुणा की है जननी
है प्यार भरा उसके मन में।
वह द्वेष रहित विचरा करती;
मानव के सहज सरल मन में।३।

इसका सहवासी सुख पाता
जीवन को शल्य रहित पाता।
सबका प्रिय बना रहे जग में,
सबको सुख देकर सुख पाता।४।

यदि दुःख अपरिमित आ जाए
जीवन भी गलने लग जाए।
तो भी घबराता कभी नहीं,
चाहे तन जलने लग जाए।५।

उसका मस्तिष्क अचल रहता
उसका चिन्तन, निर्मल रहता।
उसकी चेतना, सजग रहती,
अन्तर्बल-बोध, सबल रहता।६।

भावना न विकृत हो पाती
साधना न अकृत हो पाती।
भीतर बल, अन्तहीन होता,
कल्पना न कलुषित हो पाती।७।

ऐसा भी देखा दुनियाँ में
समतामय प्राण, गये कोंचे।
कोकिल जो, मिष्ठभाषिणी है,
उसके भी पंख गये नोंचे।८।

ऐसा ही दुनियाँ का रिवाज
चलती धारा में बह जाती।
पल में परिवर्तित हो जाती,
बिन सोचे कुछ भी कह जाती।९।

पर समतापूर्ण हृदय जिसका
वह सागर-सा गम्भीर रहे।
उसमें बहुमूल्य रत्न रहते,
वह मर्यादित औ' धीर रहे।१०।

समता का अमृत जिस मन में
वह मन भी होता है विशाल।
अन्तर, सरसिज-सा खिला रहे,
होता है कब संकुचित भाल।११।

अन्तर्थल सदा रहे उर्वर
उसमें न दीखता है अकाल।
पड़ते ही बीज, उभर आए,
जब देखो, दिखता है, सुकाल।१२।

ऊपर से तापस वेष रहे
रूखापन तन पर दिखता हो।
भीतर, प्रतिपल, रस का झरना,
पर, अमृत के कण भरता हो।१३।

समता की ठंडक भीतर
बाहर का ताप नहीं खल
कागज़ के दोने में ज
ज्वाला पर कभी नहं

ऐसे को जलने का डर क्या
वह अजर, अमर, शाश्वत होता।
जिसमें समता का बल होता,
वह आत्मरूप शाश्वत होता।१५।

दीक्षा के समीप
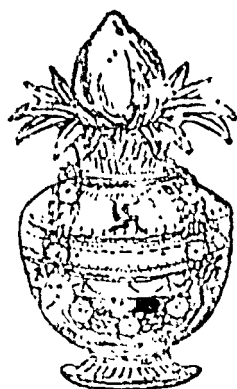
करुणा, दान, अपरिग्रह, समता
सत्य, अहिंसा, सब पर ममता।
यह परिकल्पन, किया निरन्तर,
सजग हुई, संयम की क्षमता।१।

वर्धमान परिपक्व हो चुके
एक बार कटिबद्ध हो चुके
काट छाँट, माया के बन्धन,
अपने में सम्बद्ध हो चुके।२।

उसी समय देवों ने आकर
उनके सम्मुख शीश झुकाकर।
प्रभु को दीक्षित हो जाने को,
किया निवेदन, कुछ सकुचाकर।३।

× ×

प्रभु तो बैठे थे तैयार,
वन जाने को थे तैयार।
देव गये प्रभु की स्वीकृति ले,
करने सामग्री तैयार।४।

क्षत्रिय कुण्ड-ग्राम के राजा
नन्दीवर्धन, भैया राजा।
मन में परम शांति धारण कर,
जुटे कार्य में थे बिन बाधा।५।

भीगे लोचन नगर-जनों के
मन में कसकन नगर-जनों के।
वर्धमान तजकर जाएँगे,
मन में पीड़ा, प्रजा-जनों के।६।

किन्तु सृष्टि के सब तत्वों में
और दृष्टि के सब तथ्यों में।
दिखता था समभाव तुष्टिमय,
मनुज देवता, तिर्यंचों में।७।

वर्धमान महलों को तजकर
अपने पास न कुछ भी रखकर
आत्म-शोध करने जाएँगे—
दृढ़ संकल्प हृदय में रखकर ।८।

तज देने की श्रेष्ठ भावना
ऊपर से श्रम साध्य साधना ।
विघ्नहीन चिन्तन की धारा,
और साम्य की मृदुल भावना ।९।

× ×

नाथ स्वयम् को पहचानेंगे
अन्तिम निर्णय कर पाएँगे ।
मिल जाएगी, इनको मंजिल,
तब कुछ निश्चित कह पाएंगे ।१०।

तीर्थंकर होने को आए
वीतराग बनने को आए ।
खोने पाने का भय क्या हो,
यह तो बस देने को आए ।११।

यह जग की पीड़ा हर लेंगे
अन्धेरे को भी हर लेंगे ।
दुख में गलने सड़ने वाले—
प्राणी का दुख भी हर लेंगे ।१२।

यह अन्धों की आँख बनेंगे
परहित करते हुए चलेंगे।
फूल खिलेंगे उस धरती पर,
जिसपर इनके चरण पड़ेंगे।१३।

धूल वहाँ की महक उठेगी
सृष्टि वहाँ की चहक उठेगी।
जहाँ रुकेंगे पलभर को भी,
वहाँ ज़िन्दगी विहंस उठेगी।१४।

यह जीवों को राह दिखाने
उनकी उलझन को सुलझाने।
ऐसे ही पथ पर चल देंगे,
त्रस्त जीव को त्राण दिलाने।१५।

× ×

दिखती चारों ओर विषमता
जीव न धारण करता समता।
हिंसा की ज्वाला में जलता,
मन में जगती, प्रतिपल खलता।१६।

मूक जीव बलि पर चढ़ जाते
जीने के लाले पड़ जाते।
धर्म लहू में डुबकी लेता,
औ–' उसके झण्डे गड़ जाते।१७।

हा-हत्या से भरी क्रिया ने
तमोगुणी उस धर्म-क्रिया ने।
वर्धमान के कोमल मन को,
वींध दिया, उस क्रूर क्रिया ने।१८।

मन में कोई कहता रहता,
पल-पल प्रश्न उभरता रहता।
हत्या धर्म कही जाएगी,
पाप, मनुज फिर किसको कहता।१९।

जीवन सबको प्यारा लगता
मरना किसको अच्छा लगता।
जीवन की रक्षा करने को,
प्राणी, यत्न, सैंकड़ों करता।२०।

यह जीवन जाने के भय से,
हत्या के सम्भावित भय से।
प्राणी, छिपा-छिपा है फिरता,
पीला पड़ जाता है भय से।२१।

ऐसे प्राणी को जब कोई,
ऐसे दीन हीन को कोई।
टुकड़े-टुकड़े है कर देता,
देवकृपा पाने को कोई।२२।

तो करुणा, सिर धुनने लगती,
क्षमा, सिसकियाँ भरने लगती।
यह कैसा है धर्म अनोखा,
जिसमें हिंसा करनी पड़ती।२३।

यह भावों की एक शृंखला
यह चिन्तन की एक मेखला।
वर्धमान को घेर चुकी थी,
अनटूटी सी भाव शृंखला।२४।

इसी शृंखला को चटकाने,
इसके साधन सभी जुटाने।
राजकुंवर उद्यत थे बैठे,
तप से काया को दहकाने।२५।

तप में ज्यों-ज्यों देह तपेगी
भीतर तप की ज्योति जलेगी।
जीवन की परवशता सारी,
तिल-तिल करके स्वयम् जलेगी।२६।

तव स्वाधीन, जीव यह होगा,
माया-मुक्त, जीव यह होगा।
आत्मदान करके यह प्राणी,
तीन लोक का त्राता होगा।२७।
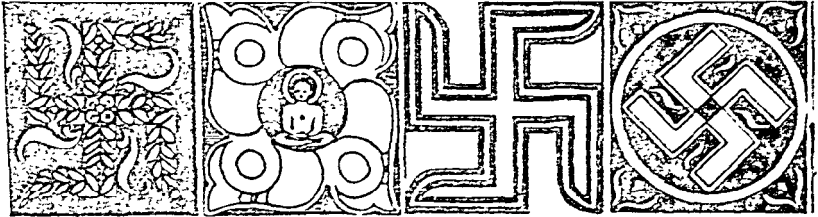
दीक्षा
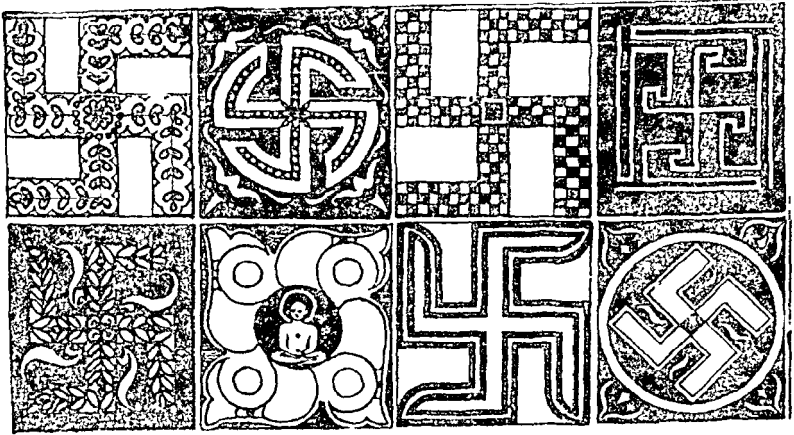
मगसिर मास, पक्ष अन्धेरा
दसवीं तिथि का सुखद सवेरा।
शीतल पवन, श्वास थी भरती,
बीत चुकी निशि, गया अंधेरा।1।

वर्धमान महलों से निकले
चन्द्रप्रभा शिविका पर निकले।
रत्न-जटित परिधान पहनकर,
मन्द-मन्द मुस्काते निकले।2।

दूर दूर तक नर नारी थे
इन्द्र और विद्याधारी थे।
दिव्य मधुर स्वर फूट रहे थे,
अनुपम वाद्यों की झारी से।३।

सब देशों के राजा आए
प्रभु को शीश झुकाते आए,
अर्चन करते गाते आए।
श्रद्धावनत हुए से आए।४।

वर्धमान शिविका में बैठे
सम्राटों का तेज समेटे।
जैसे धीर-वीर सेनानी,
शत्रु-विजय करने को बैठे।५।

केवल, एक लक्ष्य था सम्मुख
केवल, एक दिशा थी अभिमुख।
चेतन को जागृत करना है,
होकर निश्चित् ही अन्तर्मुख।६।

चिन्तन में कोई भी वाधा
पलक झपकने की भी वाधा।
उन्हें लगी लगने अति दुःसह,
रञ्चमात्र लघुतम भी वाधा।७।

कब पहुँचेंगे, निर्जन वन में
केवल चिन्तन, होगा मन में।
पशु, पक्षी, कुछ जलचर होंगे,
सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, गगन में।८।

वहाँ न कोई शासक होगा
और न कोई शासित होगा।
निर्मल, स्वच्छ जल-प्रपात-सा,
जीवन, निज अधिशासित होगा।९।

× ×

छूटेगा संसार आज का
तज देगा अनुराग, आज का।
मोह जाल से दूर निकलकर,
विघ्न टलेगा, इस समाज का।१०।

एक बार सब विस्मृत करके
काया को भी विस्मृत करके।
भीतर, मात्र, निरखना होगा,
एक बार सब विस्मृत करके।११।

जाने कब से पीड़ा सहकर
नरक यातना कितनी सहकर।
जीव, अविस्मृत होता जाता,
काया की सीमा में रहकर।१२।

कितना दुःख वेदना कितनी
जीवन मरण, वेदना कितनी !
सुख तो मधु की एक बूँद है,
तीखी शूलें चुभती कितनी ।१३।

शर शैया पर लेटे लेटे
जीने की पर आश समेटे ।
जीव नहीं है थक पाता क्यों–
पंक, कर्म का रहे लपेटे ।१४।

पंक, यत्न के बहते जल से
ज्ञान, साधना के अमि-जल से ।
धोकर और पोंछकर अब तो,
स्वच्छ बनाना होगा बल से ।१५।

तभी आरसी में दीखेगा
अपना रूप ठीक दीखेगा ।
उस पर जमी परत को धोकर–
मुखरित सत्य तभी दीखेगा ।१६।

× ×

दीक्षा के क्षण

सुरगण, नृपगण और नगरजन
अभिवादन करता था जन जन ।
देव-दुन्दुभी, अपनी ध्वनि से,
जागृत करती थी सबका मन ।१७।

वर्धमान जंगल में आए
सभी खड़े थे शीश झुकाए।
तन से वस्त्र और आभूषण,
एक एक करके सरकाए।१८।

खड़े हुए विभु एक शिला पर
पहुँचा दायाँ हाथ शिखा पर।
काल, एक बार को थमकर,
रुका रहा था पाँव उठाकर।१९।

पलक झपकते, पाँच मुष्टि से
झटका देकर सबल यष्टि से।
केश लुचक डाले सबके सब,
अभिनन्दित हो, पुष्प-वृष्टि से।२०।

पुनः दुन्दुभी का स्वर गूंजा
दसों दिशाओं में स्वर गूंजा।
जय जयकार किया, सुर नर ने,
धरती क्या, अम्बर भी गूंजा।२१।

मनःपर्यज्ञान की उपलब्धि

अनाहार थे दो दिन से प्रभु
शांत चित्त थे, वर्धमान प्रभु।
ज्ञातृषण्ड वन हुआ दीप्तिमय,
पद्मासन में बैठे थे प्रभु।१।

नवदीक्षित विभु, अन्तर्मन में–
लीन, विराजित थे, उस क्षण में।
मनःपर्य से हुए युक्त प्रभु–
उत्तर फाल्गुण, प्रथम चरण में।२।

तेज टपकता सौम्य वदन से
अमृत झरता गौर वदन से।
दिव्य छटा थी अद्भुत शोभा,
झाँके ज्यों शत् सूर्य गगन से।३।

एक शिला पर पाँओं धरकर
इन्द्रदेव ने आगे बढ़कर।
नव दीक्षित विभु के काँधे पर–
ओढ़ाई चादर समेटकर।४।

●

दीक्षा के उपरांत

अनायास विभु खड़े हो गए
पल में सब से विलग हो गए।
नन्दीवर्धन अब न सह सके,
करुणा विह्वल दुखी हो गए।१।

छलके नयन, वेदना उमड़ी
अन्तर से काया थी सिकुड़ी।
चटक गए वीणा के तार,
स्वर लहरी थी उखड़ी जकड़ी।२।

जीवन हुआ अधूरा अब तो
सब कुछ रहा अपूरा अब तो।
अब एकाकी जीना होगा,
भाई छोड़ गया है अब तो।३।

नन्दीवर्धन का मन रोया
अणु अणु, वर्धमान में खोया।
मोह-ज्वार, सीमा को तजकर—
अन्तहीन मरुथल में खोया।४।

वह मरुथल था, हृदय उसी का
श्रांत, क्लांत, जर्जरित, दुखी था।
जिसमें जल अब शेष नहीं था,
उसमें मधुरस भरा कभी था।५।

लुटा लुटा-सा शुष्क नयन से
देख रहा था, खुले नयन से।
ममता का धन दूर जा रहा,
उसके आकुल-व्याकुल मन से।६।

पीड़ा सीमा लाँघ चुकी थी
ममता मन को छेद चुकी थी।
अवयव शिथिल हुए थे उसके,
माया, अन्तर भेद चुकी थी।७।

वर्धमान जा रहे दूर थे
आँखों से हो रहे दूर थे।
वे वियोग के दुःसह पल थे,
अनुभव हुए बड़े क्रूर थे।८।

ब्राह्मण को दान
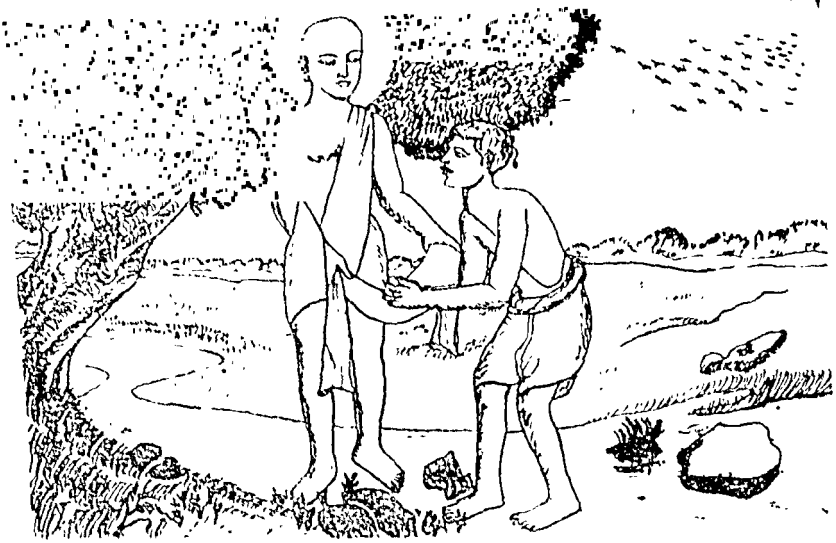
दीक्षित होकर वर्धमान,
जंगल की ओर बढ़े थे।
केवल, देव-दुष्य कन्धे पर,
डाले हुए बढ़े थे।1।

तभी सोम शर्मा, इक ब्राह्मण
उनके पीछे भागा।
दीन, दुखी, नंगा-भूखा था,
कुछ पाने को भागा।2।

नहीं उन्होंने पीछे मुड़कर
एक बार भी देखा था।
उनके मन में किसी वस्तु का–
कोई शेष न लेखा था।८।

उनके पास न क्षण भर भी था
ऐसे ही खो देने को।
किन्हीं व्यर्थ की चिन्ताओं में,
अपना मन खो देने को।९।

छोड़ दिया सर्वस्व उन्होंने–
था, अपनी ही इच्छा से।
अतुल सम्पदा, राज-पाट–
परिवार, स्वयम् की इच्छा से।१०।

फिर यह देव-दुष्य, उनके क्या
मन में मोह जगा सकता।
वीतराग के मन में कैसे–
इसका लोभ जगा सकता।११।

जिनके लिए केश तक सिर के
एक व्यर्थ का था बन्धन।
वह विरक्त थे काया तक से,
उन्हें प्रिय अन्तर्चिन्तन।१२।

नहीं उन्होंने पीछे मुड़कर
एक बार भी देखा था।
उनके मन में किसी वस्तु का–
कोई शेष न लेखा था।८।

उनके पास न क्षण भर भी था
ऐसे ही खो देने को।
किन्हीं व्यर्थ की चिन्ताओं में,
अपना मन खो देने को।९।

छोड़ दिया सर्वस्व उन्होंने–
था, अपनी ही इच्छा से।
अतुल सम्पदा, राज-पाट–
परिवार, स्वयम् की इच्छा से।१०।

फिर यह देव-दुष्य, उनके क्या
मन में मोह जगा सकता।
वीतराग के मन में कैसे–
इसका लोभ जगा सकता।११।

जिनके लिए केश तक सिर के
एक व्यर्थ का था बन्धन।
वह विरक्त थे काया तक से,
उन्हें प्रिय अन्तर्चिन्तन।१२।

प्रभु ने देव-दुष्य ही आधा
ब्राह्मण को दे डाला।
अपने तन का आधा कपड़ा,
निर्धन को दे डाला।३।

यह देने की उच्च भावना
कैसी पुण्यमयी थी।
पर-पीड़ा हरने की इच्छा,
कैसी पुण्यमयी थी।४।

देव-दुष्य का आधा कपड़ा
पाकर सुखी हुआ ब्राह्मण।
अगले ही पल धनी हो गया,
जन्म-जात निर्धन ब्राह्मण।५।

एक लाख सोने की मोहर,
उस कपड़े का मोल पड़ा।
इतने धन से झोली भरकर,
विस्मित ब्राह्मण रहा खड़ा।६।

देव-दुष्य का शेष भाग भी
झाड़ी में था उलझ गया।
प्रभु ने आगे कदम बढ़ाए,
वस्त्र वहीं पर सरक गया।७।

नहीं उन्होंने पीछे मुड़कर
एक बार भी देखा था।
उनके मन में किसी वस्तु का—
कोई शेष न लेखा था।८।

उनके पास न क्षण भर भी था
ऐसे ही खो देने को।
किन्हीं व्यर्थ की चिन्ताओं में,
अपना मन खो देने को।९।

छोड़ दिया सर्वस्व उन्होंने—
था, अपनी ही इच्छा से।
अतुल सम्पदा, राज-पाट—
परिवार, स्वयम् की इच्छा से।१०।

फिर यह देव-दुष्य, उनके क्या
मन में मोह जगा सकता।
वीतराग के मन में कैसे—
इसका लोभ जगा सकता।११।

जिनके लिए केश तक सिर के
एक व्यर्थ का था बन्धन।
वह विरक्त थे काया तक से,
उन्हें प्रिय अन्तर्चिन्तन।१२।

पञ्चम सोपान
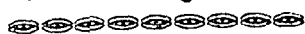
वन-प्राङ्गण में

वर्धमान अपने में तन्मय,
पहुँचे नीरव वन के बीच।
शांत चित्त से वन वैभव ने—
उन्हें समाया अपने बीच।१।

ऊपर, वृक्ष-पंक्ति की छाया,
नीचे, खुली धरा की काया।
दूर-दूर तक विस्तृत वन था,
अभिनन्दन करता-सा पाया।२।

सब कुछ सीमाहीन यहाँ था,
सब कुछ बन्धनहीन यहाँ था,
मुक्त पवन था, मुक्त गगन था,
सब कोई स्वाधीन यहाँ था।३।

सीमित राजमहल के वासी
आ पहुँचे असीम के बीच।
सब के प्रिय बन जाने को वह,
पहुँचे, पशु पक्षी के बीच।४।

वहाँ, राजसी कृत्रिम-पन था,
सबमें एक परायापन था।
पंख पंखेरू, लता-द्रुमों में–
यहाँ, अजाना, अपनापन था।५।

सबके सब निर्भीक भाव से
हिंसक पशु भी, शांत भाव से।
उनके निकट आनकर बैठे,
मन में सबके मृदुल भाव थे।६।

वहाँ न कोई प्रश्न चिन्ह था,
आशंका का नहीं चिन्ह था।
किन्तु, वर्धमान के भीतर–
एक अनोखा, प्रश्न-चिन्ह था।७।

× ×

जिन्हें जंगली कहकर मानव,
जिन्हें, जानवर कहकर मानव।
ऊँचेपन का दम्भ दिखाता,
जिन्हें, मूढ़ जानकर मानव।८।

ये तो बड़े भले हैं लगते,
मानव से ऊँचे हैं लगते।
इनमें समता भरी हुई है,
दम्भहीन, स्वाभाविक लगते।९।

जलधारा-सा इनका जीवन
स्वच्छ, सरल-सा इनका जीवन ।
खुली हवा में रहते सहते,
सीमाहीन बना है जीवन ।१०।

इनमें रहकर जीना सीखें,
जीवन के तथ्यों को समझें ।
ये आडम्बरहीन जीव हैं,
इनसे कुछ तो जानें-समझें ।११।

वाह मनुज, तेरा क्या निर्णय,
श्रमिक, अभावों में है गलता ।
स्वार्थहीन, सन्तुष्ट जीव तो—
सदा अनादर में है पलता ।१२।

× ×

यह कृतघ्नता, यह निष्ठुरता,
मानव जीवन की माया है ।
वन के तो अद्भुत् प्रांगण में—
पेड़ों की शीतल छाया है ।१३।

वर्धमान, खो गए इसी में
दुविधा से छुटकारा पाया।
घुल-मिल गए उन्हीं में जाकर,
उनकी ममता को अपनाया।१५।

स्वर-साधना

वर्धमान ने दूर-दूर तक दृष्टि उठाकर,
मुखरित और शांत भाव से वन को देखा।
देखी अपलक और निरन्तर, कई घड़ी तक,
एक अपरिचित, अनजानी, ममता की रेखा।१।

पेड़ दिखे बाहें फैलाए, खड़े मग्न से,
अनायास जा पड़ी दृष्टि थी, उनके ऊपर।
पाषाणों से लिपटी बेलें, मुग्ध-भाव से,
जड़ चेतन का कोई दिखा न भेद वहां पर।२।

विहग, पंक्ति में बँधे हुए से उड़े गगन में,
स्वर-सागर-सा लहराया उस वन-मण्डल में।
भावलीन थे सभी तत्व, हो गए एक-रस,
एक-चित्त तल्लीन सभी थे, उस अञ्चल में।३।

बहती सरिताओं का कल-कल करता स्वर था,
झरते झरनों से फूट रहा हर-हर का स्वर था।
वायु झकोरों से तरु-पल्लव झूम रहे थे,
करतल-ध्वनि का गूंज रहा, मीठा-सा स्वर था।४।

फूट रहा संगीत हृदय को छूने वाला,
शिलाखण्ड दे रहे थाप, तबले पर जैसे।
बीच-बीच में कोयल ले आलाप रही थी,
सकल सृष्टि लयलीन, दिव्य-सी ध्वनि में जैसे।५।

निकल पड़े तब वर्धमान के अन्तर से स्वर,
एक और निर्झर था, मधु का फूट पड़ा।
टप-टप लगे टपकने, हर-सिंगार कुसुम,
स्वर-धारा का फव्वारा-सा छूट पड़ा।६।

वन की सारी प्रजा, महामानव के संग,
एकप्राण होकर थी पुलकित जान पड़ी।
वर्धमान के स्वर में, स्वर मिश्रित करके,
वन प्रांगण में अहा, थिरकती जान पड़ी।७।

स्वर-लहरों का घर्षण, सागर-मन्थन-सा,
कई घड़ी तक चला निरन्तर, जैसे ही।
कुण्डलिनी से बहकर, अमृत उमड़ पड़ा,
लगा सींचने, ब्रह्म-रन्ध्र को वैसे ही।८।

स्वर-मन्थन से, अंग-अंग में प्राण जगे,
उन प्राणों में चेतन तत्व हुआ मुखरित।
भीतर जीव, प्रबुद्ध-शुद्ध हो उठ बैठा,
अणु-अणु हो गतिमान हुआ था तब मुखरित।९।

प्रथम-उपसर्ग

प्रभु थे मौन ध्यान में लीन
वहीं पर खड़े, नेत्र को मूंद।
पतंगे, मधुकर, कीड़े आए,
तन पर लिपी गन्ध को सूंघ।१।

उन कीटों ने कुछ ही पल में
उनकी देह छेद दी सारी।
पर विभु थे चिन्तन में तन्मय,
उनके साहस को बलिहारी।२।

शत-शत शूलों के चुभने की
पीड़ा कितनी हो सकती है!
भँवरों के दंशन की पीड़ा,
कितनी दुखमय हो सकती है!३!

इसका ध्यान न उनको आया
छलनी होती जाती काया।
कीट, पतंगों, भँवरों ने तो—
भोजन अपना उसे बनाया।४।

करने विगत कर्म का, चुकता
सहली शांत चित्त से पीड़ा।
कीटों की उस क्रूर क्रिया को–
जाना उन जीवों की क्रीड़ा।५।

जब तक गंध युक्त द्रव्यों का
मिलता, स्वाद रहा भंवरों को।
तब तक रहे नोंचते काया–
कीड़े चिपके थे अधरों को।६।

काम विजय

(वन-सुन्दरियों का प्रयास)

कहीं से सुन्दरियों की टोली
यौवन में मदमाती आई।
तरुणी एक एक थी ऐसी,
रति-सी सुन्दर सजी सजाई।१।

कोमल पंखड़ियों से पाँव
लता-सी कोमल कोमल बाँह।
लचकती बल खाती-सी देह,
हृदय में लेकर मीठी चाह।२।

बिफरते यौवन से थी क्लांत
रही हो, उत्तेजित, उद्भ्रांत।
वासना, सगुण और साकार,
चली ज्यों करने विश्व अशांत।३।

सामने वर्धमान थे मौन
खड़े थे, देवदारु से शांत।
दमकता यौवन उनका देख,
मदन की सेना हुई अशांत।४।

हुई वह मुग्ध और उद्विग्न
काम से पीड़ित और अचेत।
वासनामय भावों में लीन,
दिखाती पल पल भाव अनेक।५।

पिघलकर नारी का व्यामोह
हृदय की सीमाओं को तोड़।
पुरुष के संयम का प्रासाद,
फोड़ने की करता था होड़।६।

मधुरतम कण्ठ, सुरीली तान
नृत्य की लय पर मीठा गान।
किए था सकल-सृष्टि-संगीत,
समन्वित स्वर का, तव संधान।७।

अविचलित वर्धमान को देख
तरुणियाँ खीझ उठीं इक बार।
हृदय का वेगपूर्ण चांचल्य,
विवश कर देता था हर बार।८।

किन्तु वह तरुण तापस्वी शांत
सहज सा खड़ा ध्यान में मग्न।
काम की सेना प्रतिपल क्षुब्ध,
और दिखती थी, होती रुग्ण।६।

काम के पाँचों कुण्ठित बाण
धरा पर आन गिरे असहाय।
शिला से ज्यों टकराकर ज्वार–
सिंधु का, बिखरा, मुँह की खाय।१०।

अन्त में हुआ पराजित काम
लौटकर चला गया निज धाम।
तरुणियाँ सम्हल गईं तत्काल,
सिहर कर जागे, उनके प्राण।११।

जोड़कर अपने दोनों हाथ
झुकी थीं सब श्रद्धा के साथ।
क्षमा का माँग रही थीं दान,
रगड़ती, धरती से थीं माथ।१२।

ग्वालों की क्रूरता

गाँवों की सीमा से बाहर, एक पेड़ के नीचे
पद्मासन में थे बैठे प्रभु, अपना ध्यान लगाए।
प्रतिपल उनकी शुद्ध-चेतना, भीतर झांक रही थी,
रहे नाक के अग्रभाग पर, अपनी दृष्टि जमाए।१।

अर्धनिमीलित लोचन दोनों, अपलक दीख रहे थे
भीतर के दृश्यों में जैसे, खोए दीख रहे थे।
अन्तर के अणु-अणु का दर्शन करते बड़ी लगन से,
बाहर की दुनियाँ से, कटकर बैठे दीख रहे थे।२।

तभी ग्वाल-बालों की टोली, निकली एक वहाँ से
बैल चराती, शोर मचाती, गाती चली वहाँ से।
बैल छोड़कर खलिहानों में, ग्वाले चले गए तो—
चरते हुए बैल कुछ पल में, ओझल हुए वहाँ से।३।

वहीं पास में वर्धमान प्रभु, ध्यान लगाए थे बैठे
अन्तर्चिन्तन-लीन हुए थे, एकचित्त होकर बैठे।
उन्हें न कुछ भी ध्यान रहा था, आने-जाने वालों का,
अहा, विश्व को विस्मृत करके, अलग-थलग थे बैठे।४।

तदनन्तर ग्वाले जब लौटे, पशु तो वहा नहीं थे
आस-पास ढूण्ढा खेतों में, पशु तो वहाँ नहीं थे।
चिन्तित स्वर में, विचलित होकर, महावीर से पूछा,
स्थूल रूप में दिखने पर भी, वह तो वहां नहीं थे।५।

× ×

बहुत खोजकर बैल मिले पर, ग्वाले खीझ उठे थे
सम्मुख बैठे, मौन तपस्वी पर भी खीझ उठे थे।
बैल बांधने वाले रस्से, प्रभु पर लगे चलाने,
उन्हें देखकर शांत, और भी, वह तो खीझ उठे थे।६।
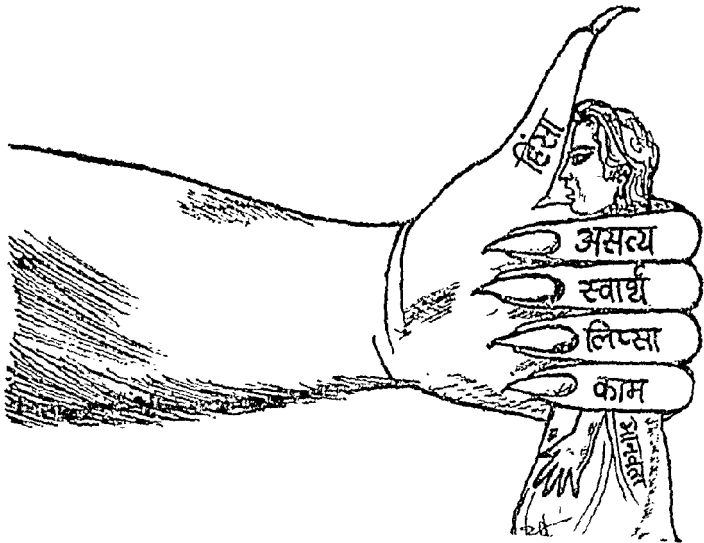
सर-सर करते रज्जु-व्याल तो, काया दंश रहे थे
मणि से वञ्चित्, क्रुद्ध नाग से, पलपल दंश रहे थे।
अंग-अंग से प्रभु के शोणित, रिसकर उमड़ रहा था,
स्वर्णिम काया में अंगारे, जैसे धंस रहे थे।७।

इन्द्र की चिन्ता

इन्द्रलोक में इन्द्रदेव, बैठे थे इन्द्रभवन में,
नूपुर की रुनझुन से झंकृत उस संगीत सदन में।१।

रूप राशियाँ, नृत्यलीन हो पलपल लचक रही थीं,
अम्बर की विद्युत-लेखाएँ, प्रतिपल चमक रही थीं।२।

इस माया को भेद, इन्द्र का ध्यान गया, विभु चरणों में,
नव-दीक्षित प्रभु महावीर के, उज्ज्वल पावन चरणों में।३।

ग्वालों की देखी निर्ममता अपने अन्तर्नयनों में,
व्याकुल होकर पहुंच गए वह, अश्रु भरे थे नयनों में।४।

× ×

ग्वालों को फटकार भगाया,
इन्द्रदेव ने उसी समय।
हाथ जोड़कर प्रभु से बोले,
भीगे स्वर में उसी समय।५।

"मुझ जैसे सेवक के रहते,
क्योंकर दुःख उठाते हैं।
इस वन में एकाकी रहकर,
काया को तड़पाते हैं।६।

अभी आपको कई वर्ष तक,
तप साधन ही करना है।
कई तरह से चिन्तन करके,
यह रस्ता तय करना है।७।

अनुमति दे दो इस अनुचर को,
साधन सभी जुटाने की।
सभी तरह के उपसर्गों से,
पावन देह बचाने की"।८।

प्रभु ने नेत्र खोलकर देखा,
इन्द्र गिरे थे चरणों में।
स्वर्गिक सुख सम्पदा सभी तो,
आन पड़ी थी चरणों में।९।

नेहसिक्त वाणी में बोले,
महावीर मुस्काते-से।
करुणा विगलित, इन्द्रदेव के
मन को सुख पहुंचाते-से।१०।

"सुख-दुख कर्मों का फल होता,
इसमें साझीदार कहां?
कर्म किए हैं मैंने तो है-
अन्य न भागीदार यहाँ।११।

सुख दुख तो आते-जाते हैं,
यह सिलसिला पुराना है।
आगे कर्म-बन्ध ही ना हों,
ऐसा ढंग बनाना है।१२।

जाओ, इन्द्रदेव महलों में,
जाकर तुम विश्राम करो।
अपने राजमहल में जाकर,
वेखटके आराम करो।१३।

मेरी नश्वर काया के हित,
क्यों मन में दुख करते हो।
अपने सुखमय जीवन में तुम,
क्यों पीड़ा को भरते हो।१४।

इस काया का भोग, जहाँ तक,
करना है, करना होगा !
इस पर जितना ऋण बाकी है,
वह अवश्य भरना होगा" ।१५।

बार-बार प्रभु को वन्दन कर,
इन्द्र गए अपने सुरलोक।
प्रभु-काया की करुण दशा पर,
अपने आँसू बरबस रोक।१६।

कोलांग—सन्निवेश में

बीती निशा, सुबह फिर आई,
प्रभु पहुँचे कोलांग नगर में।
'बहुल' नाम के ब्राह्मण के घर,
जो पड़ता था उसी डगर में।१।

दो दिन तक उपवास किया था,
आज उपारण की वेला थी।
जाग उठा था भाग्य 'बहुल' का,
उसके तरने की वेला थी।२।

वर्धमान ने वहीं, उसी क्षण,
उसके ही आहार किया था।
देवों ने उस ब्राह्मण को तब—
रत्नों का उपहार दिया था।३।

तरह-तरह के वस्त्र, धान-धन,
उसकी कुटिया पर बरसाए।
फिर देवों ने हर्षित होकर,
कई तरह के वाद्य बजाए।४।

तद्नन्तर पग बाहर धरकर,
वर्धमान चल पड़े डगर पर।
उनके पीछे चला बहुल तब,
शीश झुकाए, कुछ डग भरकर।५।

मोराक-सन्निवेश में

महावीर, मोराक पधारे
कुलपति ने सत्कार किया।
चौमासा, उसके ही घर में,
कर लेना स्वीकार किया।१।

सूखे तिनकों की कुटिया में,
खड़े-खड़े ही ध्यान किया।
राग-द्वेष को त्याग—उन्होंने,
चिन्तन का पथ ग्रहण किया।२।

लीन हुए ऐसे चिन्तन में,
बाहर का कुछ ध्यान न था।
खा डाली तिनकों की कुटिया,
पशुओं ने कब? ध्यान न था।३।

इस पर कुलपति ने फटकारा;
प्रभु थे मौन, न कुछ बोले।
वह तो अन्तर्मुखी हुए थे—
शांत रहे थे अनबोले।४।

किन्तु अचानक उनके मन में,
एक विचार जगा उस पल।
साधक के पथ को निष्कण्टक—
कर देने का भाव प्रबल।५।

कभी न ऐसे घर में रहना,
जहाँ न आदर भाव रहे।
पराधीन होकर मत रहना,
जहाँ न समता-भाव रहे।६।

मुनि को मौन, सदा रहने का
प्रभु ने था सन्देश दिया।
दीन-हीन बनकर तापस को,
रहने से था मना किया।७।

कायोत्सर्ग धारने को ही,
प्रभु ने श्रेष्ठ कहा था।
करपात्री होकर ही मुनि को—
जीना श्रेष्ठ कहा था।८।

उचित यही है कभी किसी के
सम्मुख, दीन न बनना।
विनय भाव से, हे मुनि उससे—
कुछ भी माँग न करना।९।

इसी तरह मन में प्रण करके,
प्रभु चल पड़े तभी तत्काल।
पलभर नहीं वह रुक पाए थे–
वहाँ बिताने वर्षाकाल।१०।

शूलपाणि-यक्ष द्वारा उपसर्ग

धीरे धीरे चलकर पहुँचे
एक गाँव के मन्दिर में।
अत्याचारी शूलपाणि–
दुर्दांत यक्ष के मन्दिर में।१।

जो कोई भी उस मन्दिर में
रात बिताने आ जाता।
भाग्यहीन, उस नरभक्षक के–
द्वारा मार दिया जाता।२।

नर-कंकालों की ढेरी थी
एक ओर को पड़ी हुई।
शूलपाणि के पापों की थी–
एक निशानी पड़ी हुई।३।

इसीलिए, उस जनपद का था
'अस्थिक' नाम धरा सब ने।
वर्धमान को उस मन्दिर में,
रहने को रोका सब ने।४।

किन्तु नहीं थे प्रभु साधारण—
मानव, जो विचलित होते।
शूलपाणि के डर से कैसे,
पल भर भी विचलित होते।५।

वहीं एक कोने में जाकर
प्रभु, चिन्तन में लीन हुए।
एक बार निश्चिन्त भाव से,
अपने में तल्लीन हुए।६।

शूलपाणि ने आकर देखा
एक पुरुष था ध्यान मगन।
निर्भय होकर खड़ा हुआ था,
अद्भुत उसकी दिखी लगन।७।

अहंकार का पुतला था वह—
यक्ष, बड़ा पापाचारी।
गर्जन करता हुआ बढ़ा वह,
हिंसक यक्ष, अनाचारी।८।

दर-दीवारें काँप गईं ज्यों
धरती डोल गई सारी।
पशु-पक्षी, नर-नारी पर थी,
आई, ज्यों विपदा भारी।९।

प्रभु को अविचल देख यक्ष वह
क्रोधित होकर झपट पड़ा।
भिन्न भिन्न विकराल रूप धर–
प्रभु से पापी लिपट पड़ा।१०।

उसने कष्ट दिया जी-भरकर
सभी तरह से त्रस्त किया।
किन्तु वीर ने समता रखकर,
उसे अन्त में पस्त किया।११।

क्षमा रूप देखा प्रभु का तो
लज्जा से झुक गया तभी।
क्षमा माँगकर शूलपाणि–
चरणों में प्रभु के गिरा तभी।१२।
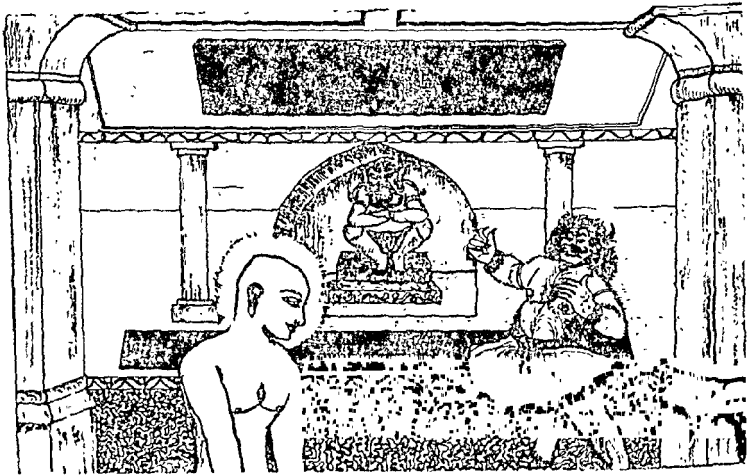
ठण्डे जल की वर्षा से ज्यों
अग्नि-ज्वाल है बुझ जाती।
या, ठण्डा-जल पी लेने से,
प्यास किसी की बुझ जाती।१३।

वैसे ही उस क्रोधी का मन
प्रभु को छूकर शांत हुआ।
सदा दहकता रहने वाला,
अंगारा भी शांत हुआ।१४।

उस पल से 'अस्थिक' की जनता
उसके भय से मुक्त हुई।
महावीर के सुप्रभाव से–
जनता, सुख से युक्त हुई।१५।

अछन्दक पर कृपा

पुनः नाथ मोराक नगर में
एक बार थे जा पहुँचे।
जनपद की जनता पर फिर से
अनुकम्पा करने पहुँचे।१।

वहाँ अछन्दक नाम धराकर
तान्त्रिक एक रहा करता।
अपना माया जाल रचाकर–
धन, सबसे ऐंठा करता।२।

किन्तु नगर में वर्धमान का
सत्य धर्म जब गूंज उठा।
सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह–
का स्वर चहुं दिशि गूंज उठा।३।

तो उस जादूगर की माया–
का अन्धेरा दूर हुआ।
जनता पर से उस मायावी–
का प्रभाव भी दूर हुआ।४।

जन-समूह प्रभु के चरणों में
था दिन रात लगा आने।
बाल, वृद्ध, नर-नारी, सारे–
लगे वहीं आने–जाने।५।

यह परिवर्तन देख अच्छन्दक
प्रभु के पास चला आया।
हाथ जोड़ करुणा-विगलित हो–
अश्रु बहाता था आया।६।

देवतुल्य व्यक्तित्व देखकर
उसको चिन्ता ने घेरा।
बोला, "नाथ आपके कारण,
धन्धा बिगड़ गया मेरा।७।
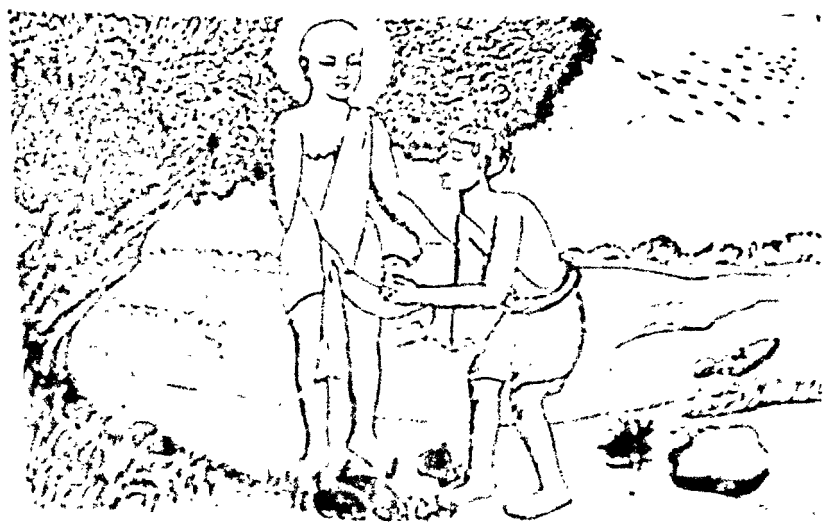
मुझे छोड़कर लोग आपके
आगे-पीछे हैं रहते ।
मैं भूखों मर जाऊँगा, प्रभु-
धनाभाव सहते-सहते" ।८।

उसकी सच्ची बात जानकर
मन ही मन सुविचार किया ।
उसका हित मन में धारण कर-
प्रभु ने तुरत विहार किया ।९।

चण्ड कौशिक का उद्धार

चलते चलते महावीर, वाचाल नगर से निकले
श्वेताम्बरी नगर के पथ पर, धीरे धीरे निकले।
बिना किसी से कुछ बोले ही, नीचे दृष्टि झुकाए,
अपने ही भीतर तन्मय हो, शाँत चित्त से निकले।१।

वह पथ सीधा औ–' छोटा था, श्वेताम्बरी नगर का
ग्वाले ने पर, किया निवेदन, संकटपूर्ण डगर था।
वर्धमान तो रुके नहीं, बिन उत्तर दिए सिधारे,
वह निर्भय, निर्वैर वीर थे, संशय उन्हें किधर था।२।

दूर दूर तक पशु-पक्षी या, पौधा हरा नहीं था
अग्नि-ज्वाल में फुँका हुआ सा, सब कुछ पड़ा वहाँ था।
घास फूँस की झोंपड़ियाँ तक, जलकर राख बनी थीं,
जड़ चेतन कुछ भी उस वन में, बाकी बचा नहीं था।३।

उस उजड़े सूखे प्रदेश में एक भयानक नाग रहा
जो क्रोधी प्रतिपल बल खाकर, बुरी तरह फुंकार रहा।
अग्नि-वमन करता था विषधर, श्वास श्वास पर वह पापी,
जैसे दानव महाकाय, कोई मद में फुँकार रहा।४।

महावीर उसकी बांबी पर सीधे चले गए थे
बिना रुके ही, निर्भय होकर, बढ़ते चले गए थे।
यही देखकर कर्महीन वह, दुम था लगा पटकने,
उसके डर से बबर शेर, जंगल से चले गए थे।५

फिर मानव की क्या बिसात थी, जो सम्मुख टिक पाता
उस विषधर के आगे कोई, कैसे पर टिक पाता।
किन्तु खड़े थे महावीर उसको ही राह दिखाने,
उनको कैसे, किस बूते पर, वह विचलित कर पाता।६।

अवधि-ज्ञान से प्रभु ने उसका, पिछला जीवन देखा
निबल जीव का महाक्रोधमय, तापस जीवन देखा।
कठिन, कठोर तपस्या करके भी, वह जीव कहाँ था,
क्रोध-कर्म से उसने, अहा–तिरस्कृत जीवन देखा।७।

करुणामय ने करुणा करके उसकी ओर निहारा
इसे चुनौती जान, सर्प वह बार बार फुंकारा।
पूरे बल से, उस विषधर ने, प्रभु को दंश लिया था,
किन्तु उन्होंने नेहपूर्ण स्वर में ही उसे पुकारा।८।

"अब तो जागो कौशिक तापस, कुछ समझो, कुछ बूझो!
कब तक ऐसे दुःख सहोगे, कुछ समझो, कुछ बूझो!
क्या बनने की इच्छा थी पर, क्या बनकर फिर आए,
ओ तापस! अपने ही हित में, कुछ समझो, कुछ बूझो"!९!

जहाँ डंक मारा विषधर ने, दूध वहाँ से निकला
प्रभु के अंगूठे से तत्क्षण, अमृत था वह निकला।
उसका छींटा पड़ा नाग पर, वह सचेत हो जागा,
उसकी काया से पल भर में, सारा विष बह निकला।१०।

पिछला जीवन उसे तुरत ही लगा दिखाई देने
अपने कर्मबन्ध का कारण लगा दिखाई देने।
उसने पश्चाताप भाव से, अपना शीश झुकाया,
अपनी दुर्गति का सब कारण, लगा दिखाई देने।११।

× ×

ग्वाल-बाल कुछ खड़े दूर से, छिपकर कौतुक देख रहे
महावीर को, उस विषधर के निकट खड़े थे, देख रहे।
महाभयंकर वह भुजंग, तब लस्त-पस्त था पड़ा हुआ,
और सभी उस महावीर को, शांत, स्वस्थ थे देख रहे।१२।

निकट पहुँचकर पत्थर मारे, लकड़ी से उलटा पलटा
बहुत देर तक 'चण्ड' नाग को, कई तरह से था पलटा।
अब तो नाग क्रोध को तज कर, समतामय था बना हुआ,
ग्वाल-बाल भयभीत न हों, इसलिए न वह उलटा-पलटा।१३।

जन्म-जन्म के कर्मबन्ध की चिन्ता उसे सताती थी
किए हुए पापों के फल का, भय उसको दिखलाती थी।
आत्म-बोध प्रभु से जो पाया, फिर न उठाया सिर उसने,
पल-पल उसकी सजग चेतना, मुक्ति पन्थ दिखलाती थी।१४।

इसी तरह वह जीव पड़ा था, मौन और पछताता-सा
विष से बुझे हुए नयनों से, तब आँसू छलकाता-सा।
कीड़ों ने उसकी काया को, छलनी-छलनी कर डाला,
पड़ा रहा वह नाग, अविचलित, दुख में भी सुख पाता-सा।१५।

उसके नीचे कोई कीड़ा दबकर, कहीं न मर जाए
हिलने डुलने से काया के, कोई जीव न दब जाए!
इसी भाव में पूर्ण अहिंसक, बनकर पड़ा रहा वह नाग,
यही सोचकर, अब न कहीं फिर हिंसा उससे हो जाए!१६!

पर-दुख की चिन्ता करता तब, पड़ा हुआ था निश्चल नाग
समता की ठण्डक से उसका, सोया हृदय गया था जाग।
कर्म काटकर कई जन्म के, उसका जीव गया ऊपर,
देवलोक में सीधा पहुंचा, उसका भाग्य गया था जाग।१७।

सुदृष्ट देव द्वारा उत्पात

महावीर नौका पर बैठे
गंगा पार लगे जाने।
पल पल पर अपशकुन देखकर—
सभी लगे थे घबराने।१।

घूबड़ पक्षी का स्वर सुनकर
सबके मन थे कांप उठे।
बीच धार में नौका डोली—
सबके थे तब सांस रुके।२।

वर्धमान बैठे थे अविचल
उनका मुख-मण्डल था शांत।
उनको छोड़ सभी नर, नारी—
पल पल होते दिखे अशांत।३।

× ×

वर्धमान का जीव कभी था
वासुदेव—त्रीपृष्ठ बना।
वह अपनी सत्ता के मद में,
हिंसक औ—' निकृष्ट बना।४।

बिना किसी कारण के उसने
एक सिंह को था मारा।
वह निर्दोष जीव था, फिर भी—
गया अकारण था मारा।५।

वही सिंह, सुदृष्ट देव बन
गंगा में घूमा करता।
दम्भ, क्रोध, हिंसा के मद में—
वह प्रतिपल झूमा करता।६।

प्रतिशोधी सुदृष्ट देव ने
अवधिज्ञान से जान लिया।
अपने घातक को इस भव में—
देख, तुरत पहचान लिया।७।

प्रतिहिंसा की ज्वाला उसके
अन्तर्मन में जाग उठी।
प्रभु समेत नौका पलटाने—
की अभिलाषा जाग उठी।८।

उसने अपनी देव-शक्ति से
गंगा जल को दिया उछाल।
नौका डगमग करके डोली,
नाविक थककर हुआ निढाल।९।

चीख उठे नौका में बैठे
सिर धुन धुनकर नर-नारी।
प्रलयकाल का अनुभव करके,
व्याकुल थे सब नर-नारी।१०।

कुछ, प्रभु महावीर के आगे
लगे लोटने, हो भयभीत।
महावीर तल्लीन स्वयम् में–
बैठे थे, भव बाधा जीत।११।

कम्बल-सम्बल देव तुरत ही
आ पहुँचे रक्षा करने।
महावीर प्रभु को देखा तो,
दौड़ पड़े रक्षा करने।१२।

गत-भव में दो बैल रहे वह
प्रभु ने करुणा उन पर की।
उन्हें दुःख में सुख पहुंचाया,
औ–' अनुकम्पा उन पर की।१३।

उस भव के 'जिनदास' दयामय
'महावीर' बनकर आए।
और बैल वह कम्बल-सम्बल–
देव-रूप धरकर आए।१४।

जिनके कारण प्राण बचे थे
उन प्रभु की स्तुति संबने की।
महावीर के पावन चरणों–
की अर्चना सभी ने की।१५।

षष्ठम् सोपान

अशरीरी-भाव का माहात्म्य

जो काया को विस्मृत करके
अन्तर्चेतन में रम जाता।
उसके सम्मुख पाप पहुँचकर,
एकाएक, वहीं थम जाता।१।

सृष्टि-तत्व, धरती का कण-कण
उसकी सेवा में सुख पाता।
देव, मनुज, दानव कोई भी,
उसके चरणों में झुक जाता।२।

जल, थल, वायु, अग्नि, अम्बर तक
सभी अंग रक्षक हैं होते।
तीन लोक के प्राणी सारे,
एक-निष्ठ सेवक हैं होते।३।

ऐसे महापुरुष जब चलते
धरा भक्ति से है बिछ जाती
सूर्य-चन्द्र अगवानी करते,
हवा, मार्ग स्वच्छ कर जाती।४।

साधना का एक रूप
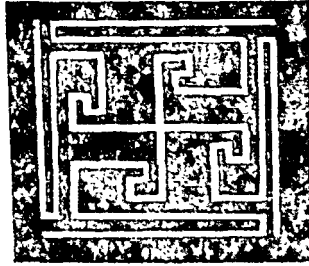
काया का तो प्रत्येक द्वार
स्वर का निष्कासन है करता।
काया के छिद्रों से छनकर,
गुञ्जित, प्रतिध्वनियां है करता।१।

प्रतिध्वनियों के स्वर मुखरित हो
मानस में समरसता भरते।
अविच्छिन्न शृंखला बन जाती,
अवयव में अक्षय-रस भरते।२।

परमाणु, देह के जग जाते
अन्तर की जड़ता हर लेते।
एकत्रित कर, बिखरी सत्ता,
नव-शक्ति हृदय में भर देते।३।

हो तन से चेतन का संगम
अन्तर्तत्वों में हो संयम।
धमनी-धमनी का अनुशीलन,
भीतरी क्रियाओं का संगम।४।

आलस्यहीन, श्रमलीन मनुज
आबद्ध-वृत्ति, सक्रिय मनुज।
हो जाता आत्मजयी अर्हत्,
यदि स्वस्थ-चित्त से रहे मनुज।५।

अपना शासक वह रहे स्वयम्
उसमें न शेष पर रहे अहम्।
निर्वैर भाव से निर्भय बन,
प्रतिपल चिन्तन औ' करे मनन।६।

'पुष्पक-पण्डित' का समाधान

वर्धमान के पद्‌चिन्हों से हुआ चमत्कृत
'पुष्पक' नामक एक ज्योतिषी चला खोजने।
चक्रवर्त्ति राजा के लक्षण देख चरण में,
कुछ पाने की चाह समेटे, चला खोजने।१।

आगे चलकर देखा उसने एक तपस्वी
ध्यान-मग्न था, मौन खड़ा, तरु की छाया में।
और पांव के चिन्ह नहीं आगे दिख पाए,
तो जग उठी निराशा उसकी कृश-काया में।२।

उसने अपने ज्योतिष और गणित की पोथी
क्षुब्ध भाव में चीर-फाड़कर दूर फैंक दी।
उसको ज्योतिष पर ही श्रद्धा नहीं रही जब,
उसने पोथी-पत्री अपनी दूर फैंक दी।३।

और खेद में खिसियाकर अपने से बोला,
'जिसे ज्ञान से चक्रवर्त्ति जाना था, मैंने।
वह तो स्वयम् अभावों में पलता योगी है,
व्यर्थ गया श्रम मेरा, समय गंवाया मैंने।४।

झूठा है ज्योतिष; मिथ्या नक्षत्र-ज्ञान है,
मैं तो अब तक रहा, अन्धेरे में ही पलता।
कई वर्ष तक पोथी पन्ने पढ़कर भी मैं—
अन्धकार में ठोकर खाते-खाते चलता'।५।

× ×

ज्योंही पोथी-पन्ने फेंक रहा था 'पुष्पक'
तभी इन्द्र ने पीछे से ही उसे पुकारा।
डोल चुकी थी निष्ठा उसकी, झटका खाकर,
उसे यत्न से, उसने बढ़कर दिया सहारा।६।

और प्यार से उसके कन्धे को सहलाकर,
कोमल स्वर में देवराज ने उसे बताया।
उस ब्राह्मण की लुप्त हो रही निष्ठा को तब,
अपनी मीठी वाणी से था पुनः जगाया।७।

बोले इन्द्र, 'तुम्हारा ज्योतिष ठीक बताता
नक्षत्रों का लेखा तुमको सत्य बताता।
यह तापस, साधारण मानव नहीं विप्रवर,
इन्हें देखकर कर्मचक्र तक है रुक जाता'।८।

'यह देवों के देव, सृष्टि के तारक-दाता
यहां पहुंचने वाला इच्छित फल है पाता।
यहाँ मनुज तो मनुज, देव भी शीश झुकाते;
छूकर इन्हें अभाव; स्वयम् पीछे हट जाता।९।

सोना-चांदी, रत्न-धान-धन, अतुल सम्पदा
दे डाली, निज हाथों से भूखे नंगों को।
और विश्व के लिए त्राण की राह खोजने;
चले तपाने, दहकाने, अपने अंगों को।१०।

'पुष्पक' ने प्रभु के चरणों में शीश नमाया
आशा से बढ़कर सुरपति से वैभव पाया।
और चला वह पण्डित, हर्षित मन से उठकर,
उसने वहाँ पहुँचकर मन वांछित धन पाया।११।

'गोशाला' ब्राह्मण

महावीर का चला यही क्रम कई मास तक !
एकबार आहार किया, उपवास, मास तक !१!

फिर, जिस घर में, प्रभु आहार ग्रहण कर लेते ।
वहाँ देवता रत्न-धान-धन बरसा देते !२!

इसकी चर्चा दूर-दूर तक फैल गई थी ।
महावीर की महिमा घर–घर फैल गई थी ।३।

चमत्कार के सम्मुख दुनियाँ है झुक जाती ।
ऐसे में श्रद्धा अनचाहे भी जग जाती ।४।

गोशाला ब्राह्मण भी ऐसा सुनकर भागा ।
उसे लगा, चिर-सुप्त भाग्य था, उसका जागा ।५।

दिव्य चरण-रज, प्रभु की शीश चढ़ाकर उसने ।
उनकी सेवा में रहने की ठानी उसने ।६।

शिष्य-भाव से वन्दन करके प्रभु से बोला ।
स्वयम् शिष्य बन जाने को उनसे था बोला ।७।

प्रभु थे मौन, न बोले एक शब्द भी मुख से ।
वह इच्छुक था, स्वीकृति पा लेने को उनसे ।८।

महावीर थे साधक पर, वह लिप्त जीव था।
लौकिक सुख, काया का सेवक, दीन जीव था।९।

वह रसना का रसिक, और लिप्सा का सेवक!
भवसागर में बहता-सा– इच्छा का सेवक।१०।

किन्तु एक कोने में मन के भीतर उसके।
श्रद्धा जाग उठी थी, कैसे भीतर उसके।११।

वह बन गया निरन्तर सेवक, प्रभु चरणों का।
वह अनुरागी हुआ तभी प्रभु के चरणों का।१२।

इस श्रद्धा के बीच कभी शंका जग जाती।
प्रभु को कभी परखने की धुन सी जग जाती।१३।

और परखने की वेला, जब-जब थी आई।
उसके भीतर की शंका ने मुँह की खाई।१४।

अब तो वह प्रभु की छाया-सा बना हुआ था।
महावीर के चरण-कमल में लगा हुआ था।१५।

हर-पल, हर-क्षण, प्रभु की सेवा में ही रहता।
उनके मुख से कुछ सुनने का इच्छुक रहता।१६।

प्रभु के संग चला गोशाला, शिष्य-भाव से।
सेवा को तत्पर रहता था, भक्ति-भाव से।१७।

इसी तरह जा पहुँचा वह कोल्लाक नगर में।
सत्गुरु के चरणों से अंकित पुण्य डगर में।१८।

उस पथ का राही बनकर पर, रहा अधूरा।
क्योंकि पात्र लिप्सा का उसका, रहा अपूरा।१९।

वह हर-पल कुछ पा लेने का इच्छुक रहता।
उसके भीतर सदा अहम् था पलता रहता।२०।

परहित के रस्ते पर चलकर भी वह साधक।
अपने ही हित के साधन में डूबा साधक।२१।

गुरु प्रभाव से अपना सिक्का लगा जमाने।
चक्रव्यूह-सा एक अनोखा चला रचाने।२२।

वर्धमान की रही भावना, तज देने की!
गोशाले की रही भावना, पा लेने की!!२३!!

एक, कर्म का बन्धन तोड़ रहा था पल-पल।
वहीं दूसरा, कर्म-वन्ध करता था, पल-पल।२४।

चक्र-व्यूह की माया के जाले में उलझा।
गुरु का ऋजु-पथ छोड़, लोभ-लिप्सा में उलझा।२५।

प्रभु से विलग हुआ वह कपटी, दम्भी-लोभी।
एक बार सत्गुरु को भूल गया वह लोभी।२६।

× ×

वर्धमान का मार्ग कष्टकर, पीड़ामय था।
गोशाले का जीवन, केवल क्रीड़ामय था।२७।

वह शृगाल-सा जीव, सिंह के साथ न रहकर।
चला गया चुपचाप, न संयम-तप को सहकर।२८।

उसने तप तो किया किन्तु, माया में बंधकर।
यंत्र-तंत्र-मंत्रों के घेरे में ही बंधकर।२९।

वह जग को विस्मित करके ही सुख पा लेता।
अपनी गुरुता को दिखलाकर सुख पा लेता।३०।

ऋद्धि-सिद्धि का लाभ उठाकर, गोशाले ने।
अपनी पूजा स्वयं कराई, गोशाले ने।३१।

वह अरिहन्त बना फिरता था, खोया मद में।
'केवलज्ञानी' कहलाता था, खोया मद में।३२।

सबसे पूजित हो जाने की इच्छा मन में।
सबका गुरु कहलाने की इच्छा थी मन में।३३।

मानव-मन की दुर्बलता के सारे लक्षण।
उसके भीतर सजग हुए थे सभी कुलक्षण।३४।

किन्तु त्याग की पूजा सदा हुआ करती है।
त्यागहीन को दुनियाँ, नहीं झुका करती है।३५।

गोशाला भी अपने मन के वश में होकर,
पूजित नहीं कभी हो पाया, मुनि भी होकर।३६।

वर्धमान का साधना-पथ

वर्धमान की दृष्टि, लक्ष्य से
पल भर कभी न हट पाई।
किसी तरह की भी पीड़ा से—
उनकी वृत्ति न हट पाई।१।

पीड़ा और क्लान्ति के लक्षण
कभी न मुख पर उभर सके।
मोह-मान, लिप्सा के लक्षण,
कभी न मन में उभर सके।२।

वह सचेत, कर्तव्यशील थे
निर्धारित सीमा में थे।
सहनशील, निर्लिप्त भाव थे,
साधन की सीमा में थे।३।

पीड़ा को सहने की क्षमता
उनकी, अद्भुत् बनी रही।
संचित कर्मों का क्षय करने—
की सुधि उनमें बनी रही।४।

पाप-पुण्य दोनों की सीमा
उनको बांध न पाती थी।
कठिन साधना करते रहकर,
देह नहीं थक पाती थी।५।

उनके भीतर जैसे सागर—
करुणा का था लहराया!
पर पीड़ा को सदा लक्ष्यकर,
उनका मानस अकुलाया।६।

शालिशीर्ष में

प्रभु के मन में, गोशाले के—
जाने का कुछ क्षोभ नहीं।
उनके तप साधन में कोई—
जग न सका अवरोध कहीं।१।

वह कठोरतम् तप करने में
लीन रहे चौमासा भर।
निराहार साधना-लीन हो,
खड़े रहे चौमासा-भर।२।

इसके नन्तर शालिशीर्ष में
जाकर ध्यान लगाया था।
शीतकाल की कड़ी ठण्ड में,
ध्यान न था कुछ काया का।३।

वहां पड़ी थी एक व्यन्तरी
उस वन के ही प्रांगण में।
प्रभु को कड़ी वेदना देकर,
हर्षित होती थी मन में।४।

कई तरह पीड़ा पहुँचाकर
थकी, अन्त में हार गई।
वर्धमान के सौम्य रूप से—
मन ही मन वह हार गई।५।

क्षमायाचना करके आखिर,
प्रभु के चरणों में आई।
अपने दुष्कृत्यों से उसके—
मन में ग्लानि उमड़ आई।६।

प्रभु तो करुणा के सागर थे
हर्ष-शोक से दूर सदा!
पीड़ा देने वाले पर भी,
उनकी करुणा रही सदा।७।

गोशाला का प्रत्यागमन

ठोकर खाकर गोशाले का ज्ञान जगा
गुरु विन सूना सूना-सा संसार लगा।
वह व्याकुल हो, गुरु के चरणों में लौटा,
प्रभु की अनुकम्पा पाने को था लौटा।१।

प्रभु का द्वार खुला था–मुक्त हृदय उनका
उनमें कहीं न गाँठ दिखी गोशाले को।
वह श्रद्धा से शीश झुकाकर रहा खड़ा,
उन चरणों में मुक्ति दिखी गोशाले को।२।

उसने प्रभु से जाना, सुख का भेद नया
विना दुःख सहने के, कौन सुखी होता !
दुःख, कसौटी है जीवन की सदा रही,
तप तप कर ही सोना है, कुन्दन होता।३।

प्रवास-काल में साधना

इसी बीच प्रभु विचरण करके
आलम्भिका नगर पहुंचे।
गोशाला भी साथ साथ था,
दोनों नगरी में पहुँचे।१।

यह वर्षा ऋतु का अवसर था
प्रभु को यहीं बिताना था।
यहीं इसी धरती पर उनको,
तप का यज्ञ रचाना था।२।

अभिग्रह धारण करके प्रभु ने
चौमासा आरम्भ किया!
आत्म-शक्ति दृढ़ कर लेने को–
कठिन कार्य आरम्भ किया।३।

जिस आसन में एक बार थे
कई कई दिन डटे रहे!
जैसे कोई वीर युद्ध में–
लक्ष्य साध कर डटा रहे।४।

एक पाँव पर कभी बैठकर
प्रभु ने पूरा दिन काटा।
कभी आँधियों में ही रहकर,
अपना कर्म जाल काटा।५।

कड़कड़ करके बिजली चमकी
अम्बर को ज्यों काट रही।
प्रभु के सम्मुख आज सभी की–
एक बार को मात रही!६!

'गोशाला' भी तप करता था
प्रभु के निकट बना रहकर।
वह भी दुःख सभी सहता था,
शांत चित्त से ही रहकर।७।

इसी तरह तप-साधन करते
राजगृही में वह पहुंचे।
प्रभु के आने की सुधि पाकर,
नर-नारी बालक पहुँचे।८।

मोह देखकर नगर जनों का
प्रभु ने निश्चय एक किया।
अनजाने अज्ञात नगर में,
रहने का संकल्प किया।९।

जहाँ न कोई भी पहचाने
जहाँ न ममता, मोह रहे।
साधक को ऐसे ही थल की,
रहती हरपल टोह रहे।१०।

जहाँ मान-सम्मान भरा हो
वहाँ न तापस कभी रहे।
जहाँ मोह का ताना-बाना,
वहाँ न साधक कभी रहे।११।

अनार्य प्रदेश में

यही सोचकर महावीर ने
आगे क़दम बढ़ाया था।
चले दु:ख को स्वयं खोजने,
दुख से नेह लगाया था।१।

पहुँच गए वह 'लाट' देश में
बर्बर, हिंसक-जन के बीच।
खेल खेल में खून बहाने–
वाले, दानव दल के बीच।२।

कौतूहलवश प्रभु को घेरे
छेड़-छाड़ करते थे वे।
चुटकी भर भर–देह नोचकर–
रक्त चुवा देते थे वे।३।

कोई डंडे बरसाता था
घूंसा कोई मार रहा।
कोई सुइयाँ चुभा रहा था,
कोई थप्पड़ मार रहा।४।

उन बर्बर हिंसक जीवों के
महावीर आभारी थे।
उनके द्वारा कर्म कटे थे,
जो अति भीषण भारी थे।५।

यही साधना महावीर की
जिसे जानकर मन काँपे।
इतनी पीड़ा सही वीर ने,
सुनकर ही तन मन काँपे

विचलित नहीं हुए वह उससे
समता मन में बनी रही।
राग-द्वेष से रहित खड़े थे,
भीतर ठण्डक भरी रही।७।

गोशाले ने भी, यह पीड़ा
चुपके चुपके सह डाली।
प्रभु का अनुगामी बनकर ही—
सभी यातना सह डाली।८।

कुर्म-गाँव में गोशाले की रक्षा

गोशाले के संग नाथ जब
कुर्म गाँव में जा पहुंचे।
कर्मों का ऋण चुकता करने,
उस जनपद में जा पहुंचे।१।

उसी गाँव में एक तपस्वी
घोर तपस्या करता था।
कई तरह के तप साधन से—
वह, बल संचित करता था।२।

गोशाले के मन के भीतर
कौतूहल-सा जाग उठा।
उस तापस की शक्ति मापने—
का कौतूहल जाग उठा।३।

उसने उस तापस को छेड़ा
तरह-तरह से व्यंग किया।
उसे चिढ़ाने और खिझाने—
को, बहु-विधि से तंग किया।४।

गोशाले की छेड़-छाड़ को
पहले उसने सहन किया।
अपने भीतर जगे क्रोध का,
कठिनाई से दमन किया।५।

गोशाला तो रुका नहीं पर,
तापस के समझाने से।
कई तरह से उस साधक के,
बार-बार समझाने से।६।

वह उस तपोधनी को फिर भी
कडुवे वचन सुनाता था।
उसे क्रोध में लाने को ही,
क्या-क्या उसे बताता था।७।

आखिर संयम त्याग तपोधन
लगा क्रोध में तपने वह!
बिफर उठा विकराल नाग सा,
लगा भयानक लगने वह!८!

भंवें तनीं, खुल गईं जटाएं
लम्बे श्वास लगा भरने।
अग्नि-वमन करता वह तापस,
भीषण कृत्य लगा करने।९।

उसके मुख से ज्वाला निकली
गोशाले की ओर चली।
उसे लीलने पल भर में ही,
मृत्यु उसी की ओर चली।१०।

तब भयभीत हुआ गोशाला
अपने गुरु की ओर चला।
जल जाने के भय से अब तो,
आकुल व्याकुल भाग चला।११।

पीछे-पीछे चला तपस्वी
मुख से लपटें तजता था।
जैसे काल उसे खाने को–
बढ़ा आ रहा लगता था।१२।

तेजोलेश्या, उस तापस की
पल पल थी तब भड़क उठी।
जैसे सब कुछ राख बनाने–
को, ज्वाला थी तड़क उठी !१३!

गोशाला गिरता–पड़ता-सा
प्रभु के पीछे आन छिपा।
रोता चिल्लाता, कंपता-सा,
भय से पीला पड़ा दिखा।१४।

महावीर ने शीतल-लेश्या
तुरत तपस्वी पर छोड़ी।
अपने नयनों के अमृत की—
पिचकारी उस पर छोड़ी।१५।

तापस के भीतर की ज्वाला
अगले ही पल शांत हुई।
धक्-धक् करती तेजोलेश्या,
पल भर में थी शांत हुई।१६।

प्रभु को एक दृष्टि भरकर जो
तापस ने दो पल देखा।
उनके निर्मल दो नयनों में,
जाने उसने क्या देखा?१७?

हाथ जोड़कर—क्षमा माँगकर
वह झुककर था बैठ गया।
सकुचाता-सा और लजाता,
वह चरणों में बैठ गया।१८।

यह प्रभु की करुणा का फल था
जो गोशाला, जीवित था।
तापस अपनी क्रोध-क्रिया पर,
स्वयम् रहा हो लज्जित था।१९।

'तप का तेज सम्हाले तापस,
तो सच्चा साधक होता !
क्रोध, तपस्वी के विकास में,
सदा-सदा बाधक होता' ।२०।

× ×

चला गया तापस, –गोशाला
प्रभु के पास चला आया !
किन्तु हृदय में कौतूहल तो,
उसके नहीं समा पाया !२१!

अवसर पाकर प्रभु से उसने
अपने मन की बात कही !
तेजोलेश्या के बारे में,
जो भीतर थी बात रही ।२२।

सहज भाव से प्रभु ने उसको
उस लेश्या का ज्ञान दिया ।
उसको मनचाही दौलत का,
बिन माँगे ही दान दिया ।२३।

पर गोशाले के मानस में
कुछ विचित्र-सी बात रही !
कुछ कौतुक जग को दिखलाकर–
गुरु बनने की चाह रही !२४!

कुछ ही दिन के तप से उसने
भीतर तेज समेट लिया।
घातक तेजोलेश्या का बल,
करके यत्न सहेज लिया।२५।

किन्तु शक्ति तेजोलेश्या की
नहीं पचा पाया नादान !
अपने भीतर चण्ड तेज को–
चला परखने वह अनजान !२६!

इतने में, पानी भरने को
दासी एक चली आई।
गोशाले ने उसे छेड़कर–
गाली उससे थी खाई।२७।

ज़हरीली नागिन-सी दासी
भरी क्रोध में फुंकारी।
गोशाले को चली मारने,
भूल गई सुध-बुध सारी।२८।

वह तो अवसर खोज रहा था
अपना क्रोध बढ़ाने का।
उसी क्रोध की चण्ड आग में,
उसको तुरत जलाने का।२९।

'बहुला दासी' से आहार-ग्रहण

महावीर, 'यष्टिक' नगरी में
जाकर तप में लीन हुए।
'भद्रा' नामक तप धारणकर,
अपने में तल्लीन हुए।१।

उदयकाल से अस्तकाल तक
पूर्व दिशा को ही देखा।
खड़े-खड़े ही रात बिताई,
एक बिन्दु पर ही देखा।२।

दश-दश दिन तक कुछ खाने को
उनको था अवकाश कहां?
लक्ष्य-बिन्दु से दृष्टि हटाने—
को, पलभर—था पास कहाँ?३?

घोर तपस्या——सतत साधना
कई दिनों से चलती थी।
उनके भीतर, श्रम करने की—
प्रबल भावना पलती थी।४।

उसी बीच में 'बहुला' नामक
दासी से भोजन पाया !
ठण्डे, बुसे हुए चावल को–
शाँत - भाव से था खाया ।५।

× ×

घर के बर्तन चली पोंछने
इक दिन, दासी 'बहुला' थी ।
ठण्डे, बुसे हुए चावल को–
चली फैंकने 'बहुला' थी ।६।

तभी द्वार पर प्रभु ने आकर
अपने हाथ पसार दिए ।
सकुचाती बहुला ने उनमें–
ही चावल वे डाल दिए ।७।

खड़े-खड़े ही वहीं द्वार पर
प्रभु ने वह आहार किया ।
और ध्यान में लीन हुए ही–
नगरी से प्रस्थान किया ।८।
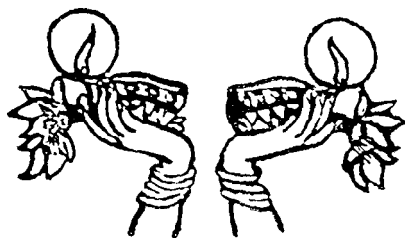
गोशाले को 'अष्टाँग-निमित्त'-सिद्धि की प्राप्ति

गोशाले ने आगे चलकर।
एक सिद्धि को फिर पाया।
तप से ही 'अष्टांग-निमित' को,
उसने था इक दिन पाया !!१!!

दो-दो बार सिद्धि को पाकर
फूला नहीं समाया वह !
हुआ गर्व में चूर तपस्वी,
माया में भरमाया वह !!२!!

वह अपने में सोच रहा था,
उसका जीवन सफल हुआ !
किन्तु क्रोध-अभिमान बढ़ा तो,
सब तप उसका विफल हुआ !!३!!

जब तक जीत न पाए मन को
तब तक साधक कैसा वह !
वर्ष-वर्ष भर करे तपस्या,
फिर जैसा का तैसा वह !!४!!

रही कामना पलती मन में
अमर-बेल-सी बढ़ जाती !
अपने ही विष से प्राणी को—
शोषित करके चढ़ जाती !!५!!

सप्तम सोपान

महावीर की पर-दुःखानुभूति और करुणा

'पेढ़न' जनपद की सीमा पर
महावीर जा पहुँचे थे।
अपने तप से पावन करने,
उस प्रदेश को पहुंचे थे।१।

उन्हीं क्षणों में सुरपति बैठे
महावीर-यश गाते थे।
प्रभु की कल्याणक गाथा को,
मृदुवाणी में गाते थे।२।

प्रभु-गुण गाते, भावलीन हो
सुरपति नहीं अघाते थे।
उनके सेवक, कई देवगण,
झूम-झूम से जाते थे।३।

किन्तु एक सुर ऐसा भी था
जो मन ही मन जलता था।
और मनुज की महिमा सुनकर,
डाह-क्षोभ में घुलता था।४।

देवलोक का अधिपति कैसे
मानव का गुण गाता था?
यही बात खलती थी उसको,
सुरपति क्यों यश गाता था?५?

सुलग उठी ज्वाला-सी मन में
सुनकर मानव की महिमा!
अहम्-भाव जग उठा देव का—
वर्धमान की सुन, गरिमा!६!

देवलोक का वासी था वह
'संगम' उसका नाम रहा!
अपने ही मन से हारा-सा,
वह था सदा अशांत रहा!७!

मन में उसके हीन भावना
पल पल बढ़ती जाती थी।
उसके मन की क्षुद्र भावना,
उसको ही तड़पाती थी!८!

उसने मन में गाँठ बाँध ली
प्रभु को चला परखने वह!
महावीर की साम्य भावना,
तब फिर चला परखने वह !९!

धरा, गगन भर गया धूल से
आँधी चली भयानक थी।
संगम की माया थी कैसी,
दिखती बड़ी भयानक थी।१०।

देवलोक का देव क्रूरता—
की सीमा को लांघ गया।
जैसे सागर, मर्यादा को—
एक बार ही लांघ गया।११।

कई मास तक, कई तरह से
संगम ने उत्पात किया!
कई तरह से महावीर पर,
उसने था आघात किया !१२!

पर प्रभु शांत-चित्त से रहकर
अपने में ही लीन रहे!
काया की माया से हटकर,
अपने में तल्लीन रहे !१३!

× ×

विगत कर्म का पूरा लेखा
वह तो चुका रहे थे।
विना विचारे उस पीड़ा को,
वह ऋण चुका रहे थे।१४।

× ×

आखिर संगम देव हार कर
प्रभु के चरणों में आया।
सभी तरह से हार मानकर,
पछताता रोता आया।१५।

प्रभु तो करुणा के सागर थे
सहनशीलता उनमें थी।
उनके मन में नहीं क्लेश था,
कहीं न पीड़ा तन में थी।१६।

× ×

महावीर को छूकर जैसे
संगम निद्रा से जागा।
अहम्-भाव, अभिमान तुरत ही—
उसके मन से था भागा।१७।

क्षमा-याचना करके प्रभु से
बार-बार पछताता था।
उनके चरणों में सिर धरकर—
बार-बार सिर धुनता था।१८।

करुणामय ने करुण दृष्टि से
उसके नयनों में देखा।
उसके जलते भुनते तन को,
एक बार छूकर देखा।१९।

× ×

पछतावे की आग लगी थी
जैसे उसके तन-मन में,
शूलें-सी चुभ-चुभ जाती थीं,
उसके पछताते मन में।२०।

इसी भाव में निर्मल होकर
वह जाने को था तैयार।
तभी 'वीर' के लोचन-द्वय से,
बरसी, आँसू की इक धार।२१।

प्रभु के मन में एक बात थी
अद्भुत् और अनोखी-सी।
संगम की भावी पीड़ा की—
चिन्ता उन्हें अनोखी थी।२२।

विगलित स्वर में बोले प्रभुवर,
'संगम! मन में है दुख एक।
तुमको पीड़ा सहनी होगी,
किए कर्म के वन्ध अनेक।२३।

सबसे बढ़कर एक वेदना
मेरे मन में उठती है।
मेरे मन में दुःसह दुख की—
एक लहर-सी जगती है।२४।

तेरे कारण, मैं तो छूटा,
कर्म-जाल से मुक्त हुआ।
मेरी नश्वर-काया से—पर,
तू दुख में अनुरक्त हुआ।२५।

× ×

पर-पीड़ा को हर लेने का
प्रभु के सम्मुख लक्ष्य रहा।
पर-हित साधन ही जीवन का—
एकमात्र ही लक्ष्य रहा।२६।

यही साधना महावीर की
आत्म-जयी का दिव्य स्वरूप।
संयम, समता, धैर्य भावना,
निश्चित् थी उनके अनुरूप।२७।

उनके सम्मुख दुनियाँ झुकती
वह सबके आराध्य रहे।
साधक उनकी करें अर्चना,
वह साधक के साध्य रहे।२८।

सत्य-रूप, शिवरूप विराजित

सुन्दरतम् जिनका परिवेश।

रजो-तमो औ–' सतोगुणों से,

मिश्रित, निखरा–उज्ज्वल वेष।२

महावीर का अभिग्रह

अभिग्रह, अन्तर की है दृढ़ता
अभिग्रह, अन्तर की महाशक्ति !
मानस का पौरुष-युक्त तत्व,
मानव की महती महाशक्ति !१!

नस-नस का निचुड़ा सौरभ यह
कस्तूरी, काया में विलुप्त !
हड्डी-मज्जा का है पराग,
रहती है तन में लुप्त-गुप्त !२!

संकल्प, अपरिमित, मन का बल
या, कह लो इसको बुद्धि-सत्व !
जीवन की परिमित सत्ता से,
निर्मित हो जाता महातत्व !३!

यह सूक्ष्म रूप में परिमल-सी
रहती है छिपी-छिपी मन में !
कर्मठता की बिखरी आभा,
रहती है बिखरी-सी तन में ।४।

सबके भीतर यह रहे व्याप्त
पर, रहे उपेक्षित जीवन भर!
उसपर भी सबको टोह रहे,
उपलब्ध न हो पर जीवन भर!५!

× ×

काया के भीतर तिमिर लोक
उसमें अनदेखा एक लोक!
ज्यों विजन प्रांत में भ्रमित रहे—
मानव, रचकर अदृष्ट लोक!६!

ऐसे ही मन का कर्म-तत्व
अलसाया-सा दीखा करता!
संयम से हीन, निरंकुश बन,
है काया में दबकर मरता!७!

यह परम सत्य है जीवन का
ताले में बन्द खजाना यह!
इस परम सत्य को पाने का—
पथ भूला, जीव अजाना यह!८!

× ×

पर वर्धमान बलशाली थे
साधक थे, कर्मठ महावीर।
अणु-अणु पर जिनका था अंकुश,
ऐसे थे अनुपम कर्मवीर।९।

जीवन को जीना सीखा था
जिस महापुरुष ने निर्भय हो।
अपने में सदा नियंत्रित हो–
जीवन को जीता, दुर्जय हो।१०।

उसने काया की नस-नस को
अपनी मुट्ठी में था बाँधा।
थी अधिशासित सारी काया,
मन की माया को था बाँधा।११।

× ×

जा पहुँचे तप-साधन करते
'कौशम्भी' नगरी के भीतर।
अमृत का झरना फूट पड़ा,
काया की गगरी के भीतर।१२।

जर्जर-सी दिखती काया में
हड्डी-पञ्जर की काया में।
था दिव्य तेज जगमग करता,
धरती की श्यामल छाया में।१३।

आँखों से करुणा थी झरती
बरसाती नदिया को भरती।
मरुधर में मानसरोवर-सी,
पल-पल में ठण्डक थी भरती।१

प्रभु बस्ती में चुपचाप चले
धरती में गाड़े दृष्टि चले।
प्रत्येक द्वार पर खड़े हुए,
पर बिना लिए कुछ, बढ़े चले।१५।

नर-नारी चिन्तामग्न हुए
प्रभु, ग्रहण न करते थे कुछ भी।
तप उनका उग्र दिखा सबको,
पर, कर न सका कोई कुछ भी।१६।

उनको कुछ, कैसे दे पाएँ ?
कुछ खाद्य उन्हें बहरा पाएँ ?
यह एक समस्या जटिल रही,
कैसे कुछ उन्हें खिला पाएँ ?१७?

प्रभु आए, आकर चले गए
बिन बोले कुछ भी, चले गए।
नगरी के लोग हुए चिन्तित,
प्रभु बिना लिए क्यों चले गए ?१८?

सब हार गये प्रभु के आगे
सब लोट गए प्रभु के आगे।
प्रभु आते थे कुछ लेने को–
पर बिना लिए, सरके आगे।१९।

प्रभु के मुख पर था शून्य-भाव
दिखते थे मंगल के प्रतीक।
पग-पग था उनका मंगलमय,
दिखते थे करुणा के प्रतीक।२०।

पर कैसा आत्म-दाह-सा था
जो बिना अग्नि ही, तपते थे।
चिर-मौन खड़े तो खड़े रहे,
अनुभूति-शून्य ही लगते थे।२१।

लोगों की आँखें गीली थीं
हो रहे विवश थे नर-नारी।
प्रभु के मन को वह क्या समझें,
भयभीत सभी थे नर-नारी।२२।

करुणामय नाथ चले आए
सब धन्य हुए जो प्रभु आए।
पर—यह संकट तो था भारी,
अब कौन उन्हें कुछ बतलाए।२३।

प्रभु के मन में तो अभिग्रह था
तेरह शर्तों का अभिग्रह था।
मानव के मन की थी दृढ़ता,
यह अभिग्रह था—बस, अभिग्रह था।२४।

दो मास बीतने को आए,
प्रभु खाद्य न कुछ भी ले पाए।
नगरी के राजा थे चिन्तित,
मंत्री भी थाह न ले पाए।२५।

उनके अभिग्रह की कथा सुनो
तुम चकित खड़े रह जाओगे।
संकल्प जान लो उनका तो,
दांतों में जीभ दबाओगे।२६।

कोई भी राजकुमारी हो
पर बिकी हुई वह दासी हो।
हाथों में हथकड़ियां पहने,
सिर-मुंडी हुई वह दासी हो।२७।

जो तीन दिवस से भूखी हो
तन पर हो कांछा मात्र एक।
ले एक छाज में उड़द पके,
देहरी के बाहर पांव एक।२८।

आंखों में जिसके हो आँसू
बैठी-बैठी वह रोती हो।
कुछ बीच-बीच में हंस भी दे,
फिर उफन-उफन कर रोती हो।२९।

यह महावीर का अभिग्रह था
विस्मयकारी था तथ्य एक।
यह अनहोनी-सी घटना थी,
दृढ़ता का द्योतक तथ्य एक।३०।

चन्दन बाला

चम्पा नगरी का राजा था
दधिवाहन—जिसका नाम रहा।
कुल-शीलवती उसकी पत्नी,
'धारिणी सती' था नाम रहा।१।

उसकी ही पुत्री वसुमति थी
गुण, रूप अनोखा था जिसका।
नखशिख में रहा सलोनापन,
था रूप चुटीला-सा जिसका।२।

सुखमय जीवन में आग लगी
दधिवाहन, रण में हार गया।
कौशम्बी का राजा जीता,
औ-' चम्पापति था हार गया।३।

दुश्मन से डरकर दधिवाहन
सब छोड़-छाड़ कर भाग गया।
ज्यों पुण्य, क्षीण हो जाने पर—
पापी के डर से भाग गया।४।

विपदा का पर्वत टूट पड़ा
चम्पा की रानी हुई कैद।
'वसुमति' भी उसके संग-संग,
दुश्मन के हाथों हुई कैद ।५।

ऐसे अवसर पर नारी का
सौंदर्य उसी को खा जाता।
उसका अपना ही रूप उसे,
पग–पग पर शूल चुभा जाता ।६।

रानी, बेटी के संग चली
सुभटों की नीयत गई बदल ।
रानी की देह सलोनी पर,
उनका मन बरबस गया फिसल ।७।

कामुक, दुर्व्यसनी सैनिक ने
तब हाथ बढ़ाया, रानी पर ।
भूखे कुत्ते–सा वह सैनिक–
तो टूट पड़ा था रानी पर ।८।

× ×

रानी भी आखिर रानी थी
सीता या, सती भवानी थी।
अपने सतीत्व के लिए मिटी,
ऐसी ही धर्म दिवानी थी ।९।

वह प्राणों पर तो खेल गई
पर, अपनी टेक नहीं छोड़ी।
अपना अस्तित्व बचाने को,
उसने अपनी काया छोड़ी।१०।

माता जब स्वर्ग सिधार गई
वसुमति की विपदा और बढ़ी।
वह खुली हाट पर अगले दिन—
थी नीलामी पर रही चढ़ी।११।

सतियों के रक्षक देवों ने
वसुमति का शील बचाया था।
रूपा—जीवा के पञ्जे से,
दुखिया को आन बचाया था।१२।

तदनन्तर वह दुखिया बाला
जा पहुँची थी फिर बिकने को।
रोती चिल्लाती खड़ी रही,
गैया, बकरी—सी बिकने को।१३।
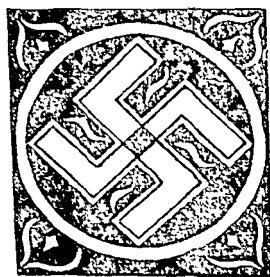
इस बार धनावह सेठ मिला
जिसने तब मोल चुकाया था।
थोड़े से सिक्कों के बदले,
उसको सेविका बनाया था।१४।

धनपति वह सेठ दयामय था
वसुमति पर उसकी थी ममता।
पुत्री-सम उसे समझता था,
उसके अन्तर में थी ममता।१५।

पैतृक-ममता जो बोल उठी
वह उसे लिवा लाया घर में।
'चन्दनबाला' रख दिया—नाम,
ममता से ले आया घर में।१६।

उसकी पत्नी, 'देवीमूला' के—
मन में तब सन्देह जगा।
उस सुन्दर चन्दनबाला से—
पति का अनुचित सम्बन्ध लगा।१७।

उस नारी का मन विकल हुआ
सौतिया-डाह जागी मन में!
चन्दनबाला का रूप देख—
थी जलन, प्रबल जागी मन में!१८!

चन्दनबाला की जंघों तक
चमकीली काली केश-राशि।
थी श्याम-घटा-सी फैल रही,
ज्यों चन्द्रवदन पर मेघराशि।१९।

'मूला' ने जल-भुनकर उसकी
वह केशराशि दी काट तभी।
औ-' सभी तरह से गृहिणी ने,'
कर ली थी मन की बात सभी।२०।

तदनन्तर अबला बाला के
पहनाई कड़ियाँ हाथों में।
फिर क्रूर भाव से बाँध जकड़,
धर दिया सूप उन हाथों में।२१।

ऐसी ही स्थिति में एक समय
चन्दनबाला थी बिलख रही।
अपनी स्थिति पर चिन्तन करके,
गीली लकड़ी-सी सुलग रही।२२।

वह भूखी-प्यासी पीड़ा में
थी रह-रह तड़प रही पल-पल।
अधरों पर पपड़ी जमी हुई,
पर, पास न था थोड़ा भी जल।२३।

थे पड़े सूप में कुछ दाने
उबले से उड़द रहे उसमें।
ऐसी पीड़ा के उस क्षण में,
जागा शुभ भाव तभी उसमें।२४।

कोई तापस जो आ जाए
मैं उसको दे दूँ यह भोजन।
यह परिमित खाद्य सही, फिर भी,
सबका सब दे डालूँ भोजन।२५।

× ×

थे उन्हीं क्षणों में महावीर
निकले आहार ग्रहण करने।
अभिग्रह को मन में धारणकर,
निकले आहार ग्रहण करने।२६।

आ गए नाथ चलते-चलते
चन्दनबाला की कोटर पर।
थे चरण बढ़े, उस ओर चले—
जा पहुंचे सीधे कोटर पर।२७।

तब चटके बन्धन उसी समय
चन्दनबाला हो गई मुक्त।
प्रभु ने अभिग्रह को पूर्ण जान—
फैलाए दोनों हाथ युक्त।२८।

रोती, हंसती उस बाला ने
दे डाला भोज्य सभी उनको।
पूरे का पूरा सूप उलट–
दे डाले उड़द सभी उनको।२९।

प्रभु ने आहार लिया उससे
औ–'खड़े-खड़े ही किया ग्रहण।
उबले उड़दों के दानों को–
था तुष्ट-हृदय से किया ग्रहण।३०।

बज उठे वाद्य तत्काल तभी
रत्नों की वर्षा हुई वहाँ।
उस सेठ धनावह के घर पर–
सोने की वर्षा हुई वहाँ।३१।

छः मास बाद आहार किया
चन्दनबाला को दिया तार।
प्रभु ऐसे ही करुणामय थे,
अनचाहे ही कर दिया पार।३२।

प्रभु वहीं खड़े थे उस पल में
चन्दनबाला के बढ़े भाव।
तप, संयम और अपरिग्रह का–
पथ, अपनाने के चढ़े भाव।३३।

प्रभु पर अन्तिम उपसर्ग

चल पड़े नाथ कौशम्बी से
चम्पा-नगरी में जा पहुंचे।
थी वर्षा ऋतु भी आ पहुँची,
वह समय विताने जा पहुँचे।१।

चौमासा-भर रह कर तप में
तब वहीं कहीं आहार किया।
तद्नन्तर कई जगह होकर–
'पणमानी' में आगमन किया।२।

पिछले कर्मों का जो लेखा
करने भुगतान स्वयं आए।
जो बोझ बना था जीवन पर,
वह बोझ हटाने थे आए।३।

जब वासुदेव, त्रीपृष्ठ बने
जी-भरकर पाप कमाया था।
शैया-पालक के कानों में–
ढलता सीसा ढलवाया था।४।

वह, मात्र कर्म का, था लेखा
उसका निपटारा करना था।
हँसते-हँसते पीड़ा सहकर—
यह लेखा चुकता करना था।५।

× ×

वह ध्यान-मग्न थे खड़े हुए
थे कर्म खपाने खड़े हुए।
आने वाले उपसर्गों को—
थे सह लेने को खड़े हुए।६।

शैया-पालक का जीव वहीं
ग्वाले के भव में था पहुंचा।
अपना खाता निपटाने को—
था उसी जगह पर जा पहुंचा।७।

प्रभु को देखा तो स्वयमेव
गवाले के मन में द्वेष बढ़ा।
ज्यों-ज्यों प्रभु को देखा उसने,
उन पर था उसका क्रोध चढ़ा।८।

लकड़ी का कीला उठा एक
दोनों कानों के आरपार।
पत्थर से ठोंके चला गया,
करता था चोटें बार-बार।६।

प्रभु थे पर, चिन्तन में खोए
काया पर उनका मोह न था।
वह तो अन्तर में लीन रहे,
वाहर का उनको ज्ञान न था।१०।

कुछ पल पीछे आँखें खोलीं
चुपचाप वढ़े आगे पथ पर।
कानों में कीले धंसे रहे,
वह दृष्टि जमाए थे पथ पर।११।

काया पर वीती–वीत गई
उनका तो उस पर ध्यान न था।
कानों में पीड़ा तो होगी,
पर उनका उस पर ध्यान न था।१२।
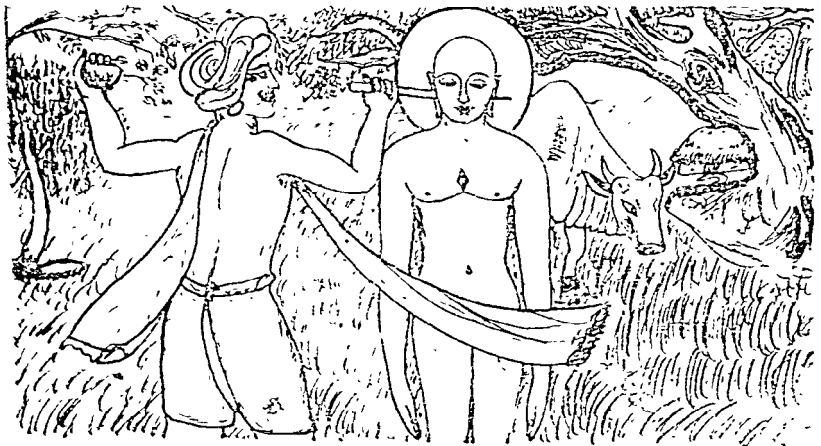
वह पहुँच गए थे बस्ती में
इक वैद्य वहाँ पर था रहता।
कहने को उसका नाम 'खाक',
पर दुःख सभी के था हरता।१३।

उसने प्रभु की काया देखी
देखे, कानों में कील धंसे।
जैसे लकड़ी के पाटे में—
हों लम्बे-लम्बे कील फंसे।१४।

तत्काल दयामय 'खाक' गया
सिद्धार्थ सेठ को ले आया।
कानों से कील खींचने को,
अपना सहयोगी ले आया।१५।

दोनों ने मिलकर यत्न किया
कानों के कीले लिए खींच।
फूटी कानों में रक्त-धार,
औ—' निकली मुख से एक चीख।१६।

वह पुण्यशील था वैद्यराज
परहित साधक था महापुरुष।
वह दया, धर्म का था ज्ञाता,
वह परम विवेकी महापुरुष।१७।

साधना की चरम स्थिति

ऐसी ही स्थिति में, उस रात घड़ी भर को
प्रभु को निद्रा ने जैसे थी दी थपकी।
एक-चित्त बैठे ही बैठे नेत्र मुंदे–
इसी तरह से प्रभु ने तो ले ली झपकी।१।

उन्हीं क्षणों में उन्हें दिखाई दिए सपन
क्रम से दश स्वप्नों को देखा सन्मति ने।
उन स्वप्नों में लक्षित था उत्थान चरम,
चेतन का प्रतिबिम्ब निहारा जगपति ने।२।

× ×

आत्म-तत्व है नित्य, चेतना रूप अनश्वर
सत्य-चित्त-आनन्द रूप है सदा अनश्वर।
यही तत्व पा लेता है जब शुक्ल ध्यान को,
स्वयमेव बन जाता है यह तो परमेश्वर।३।

इड़ा, पिंगला, साध–सुषुम्णा में जो पहुंचे
ज्योतिर्मण्डल में अविलम्ब प्राण वह, पहुंचे।
स्वप्न-जगत्, साकार–सगुण बनकर तब दिखता,
तुरत जीव हो व्याप्त, विश्व के बाहर पहुँचे।४।

तो चेतन, निज भाव समेटे, स्वप्न जगत में
चिन्तन के पंखों पर विचरे मुक्त गगन में।
उन स्वप्नों के भीतर, सत्य, सदा है पलता,
उन स्वप्नों का दर्शक, रहता सदा मनन में।५।

वर्धमान प्रभु जा पहुँचे थे ऐसी स्थिति में
जहाँ दृष्टि का भेद नहीं कुछ भी रह जाता।
अन्धकार छंटकर, रह जाता मात्र उजाला,
एक-विन्दु ही वनकर, सब कुछ है रह जाता।६।

हो जाता अज्ञान लुप्त, अन्तर जग जाता
ज्ञानमयी धारा-सी वह जाती है तन में।
भीतर-वाहर, तेज-सिक्त हो जाता सब कुछ,
स्वप्न, सत्य का रूप, धार लेता है मन में।७।

ज्ञान-तन्तु हो जाते मुखरित सहज रूप में
विकसित होता अन्तर्चेतन, पलक झपकते।
वह विराट आकार, असीमित अनुभव होता,
दिव्य रूप दिख पड़ता मुखरित, पलक झपकते।८।

ऐसे में भीतर जो दृश्य दिखा करता है
वह विराट् का लघुतम् रूप हुआ करता है।
इसीलिए वह उसी सत्य का ही गुण रखता,
वह भविष्य का छाया रूप हुआ करता है।९।

इसी तथ्य का रूप निहारा महावीर ने
दश स्वप्नों को क्रम से देखा महावीर ने।
अर्धनिमीलित नेत्र–चेतना रही सजग थी,
स्वप्न-जगत् को देखा, तत्क्षण महावीर ने।१०।

× ×

एक पिशाच महाविकराल सामने देखा
उसे सहज ही किया पराजित महावीर ने।
था पिशाच वह प्रबल, मोहिनी कर्म भयंकर,
पहले इसको ही निपटाया महावीर ने।११।

शुक्ल-ध्यान का रूप, धवल इक पक्षी देखा
अपने अन्तर का प्रतीक सपने में देखा।
बहुरंगे पक्षीगण थे, मन-भावन सुन्दर,
विविध अर्थ से युक्त, देशना का फल देखा।१२।

तदनन्तर चौथा सपना था अद्भुत् उत्तम
रत्न-जटित दो मालाएं थीं, करती जगमग।
ये भविष्य के दो प्रतीक करते थे घोषित,
साधु और श्रावक से होगी, धरती जगमग।१३।

पञ्चम् स्वप्न और भी सुन्दर दिया दिखाई
गोरी गौओं का समूह देखा था प्रभु ने।
चतुरंगे समाज की रचना वह कर देंगे,
यही तथ्य मुखरित-सा देखा होगा प्रभु ने।१४।

छठे स्वप्न में पद्म-सरोवर प्रभु ने देखा
जो सुन्दर पुष्पों से ढंका हुआ था सारा।
चतुर्देव का यह स्वरूप था, मुखरित करता,
प्रभु समझाएंगे रहस्य, लोगों को सारा।१५।

अपने ही भुज-बल से प्रभु ने स्वयम् तैरकर
पार किया था महासिन्धु सारे का सारा।
पाएंगे निर्वाण शीघ्र ही कर्म खपाकर,
और पार कर जाएंगे भव-सागर सारा।१६।

अष्टम् स्वप्न बड़ा ही मंगलमय तब देखा
जगमग करता सूर्य तिमिर को दूर भगाता।
यह था 'केवलज्ञान'–प्राप्ति का सूचक लक्षण,
जैसे कोई सुप्त मनुज को आन जगाता।१७।
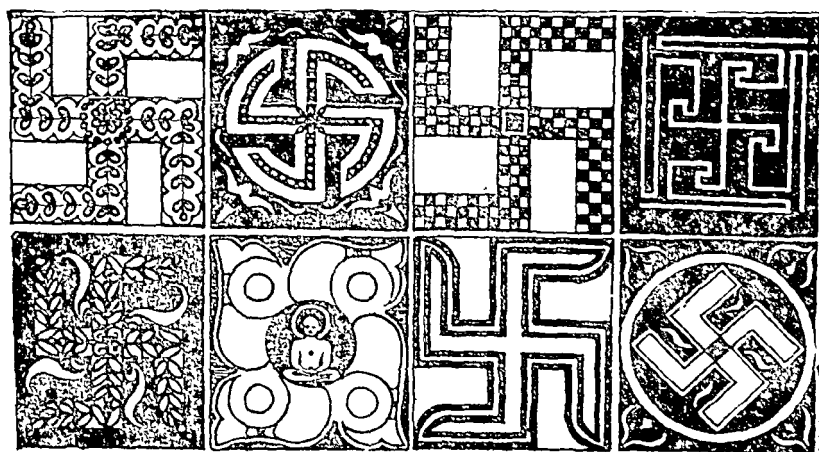
फिर देखा, अपनी ही अन्तड़ियों में लिपटा
ऊँचा पर्वत एक, धरा का बोझ बढ़ाता।
यह थी जैसे राज-घोषणा, दिव्य अनोखी,
यह दर्शक को अक्षय-यश का लाभ दिलाता।१८।

दशम् स्वप्न में 'मेरू' पर्वत पर सिंहासन
उसपर हुए विराजित, प्रभु ने, निज को देखा।
विश्व-विजय करके बैठा हो जैसे कोई,
कुछ कहने को तत्पर, प्रभु ने निज को देखा।१९।

लक्ष्य के निकट

वर्धमान फिर चले, अपापा नगरी से
और पधारे ऋजु-वालिका नदी तट पर।
जृम्भक नामक ग्राम, पुण्य का धाम रहा,
औरग्राम भी रहा, नदी के ही तट पर।१।

अब तक प्रभु ने कलुषित कर्म खपा डाले
कर्म-वन्ध का पूरा लेखा चुका दिया।
शेष न घाती कर्म वचा था खाते में,
सारे का सारा खाता ही चुका दिया।२।

साढ़े वारह वर्ष दीक्षा के पश्चात्
आज हुए थे ऋण से मुक्त दयासागर।
हँस-हँस कर उपसर्ग सहे थे प्रभुवर ने,
समतामय थे, शांत, धीर, करुणासागर।३।

काया को विस्मृत करके भी साध लिया
भीतर का दर्पण था मल से रहित हुआ।
मानस के भीतर समता की ठण्डक थी,
आगे का रस्ता, काँटों से रहित हुआ।४।

भीतर की सारी पर्तों में निर्मलता
काया के भीतर थी आभा भरी हुई।
मस्तक से चरणों के नीचे, तलुवों तक,
समता की अनुभूति सुखद थी भरी हुई।५।

काया में पाँचों मण्डल की कर्मठता
पहुँच चुकी थी जैसे अपनी सीमा पर।
किया जीव ने अपना आवागमन शेष,
साधक था निश्चिन्त, मुक्ति की सीमा पर।६।

हृदय, पारदर्शक आवरण बना जैसे
पुद्गल काया भी तत्पर थी उड़ने को।
तन का यंत्र हुआ बैठा था अब तैयार,
पवन-लहरियों पर उत्सुक था चढ़ने को।७।

ज्योति और ध्वनि से भी था गतिमान बना
नक्षत्रों से सीधा उसका नाता था।
जहाँ जहाँ तक पहुंच सकी छवि काया की;
वहाँ वहाँ तक स्वतः पहुंच ही जाता था।८।

शुक्ल-ध्यान की ओर अग्रसर जीव हुआ
छः लेश्याओं पर पाई थी विजय तभी।
पाप-पुण्य, सुख-दुःख सभी थे छोड़ गए,
सभी शत्रुओं पर, पा ली थीं विजय तभी।९।

जीव, अनाहत-नाद विसर्जित था करता
नभमणि की किरणें थीं तन में बसी हुईं।
पल-पल देह बनी जाती थी सक्षम तब,
पुद्गल तन में, आभा-सी थी बसी हुई।१०।

दिवस उष्ण था ऋजु-बालिका नदी तट पर
उष्ण बगूले—अग्नि वमन-सा थे करते।
झुलस रहे थे तरु-पल्लव–धरती-अम्बर,
महावीर ऐसे में तप-साधन करते।११।

शुक्ल-पक्ष, वैशाख मास की दशवीं थी
आस-पास में छाया का आभास न था।
गोदोह मुद्रा में प्रभु थे ध्यान मगन,
दो दिन से भोजन को भी अवकाश न था।१२।

प्रभु के भीतर रही व्याप्त हो आभा थी
रवि की किरणें उस आभा में घुली-मिलीं।
बाहर-भीतर हुई देह थी ज्योतिर्मय,
आभा में आभा थी जैसे घुली-मिली।१३।
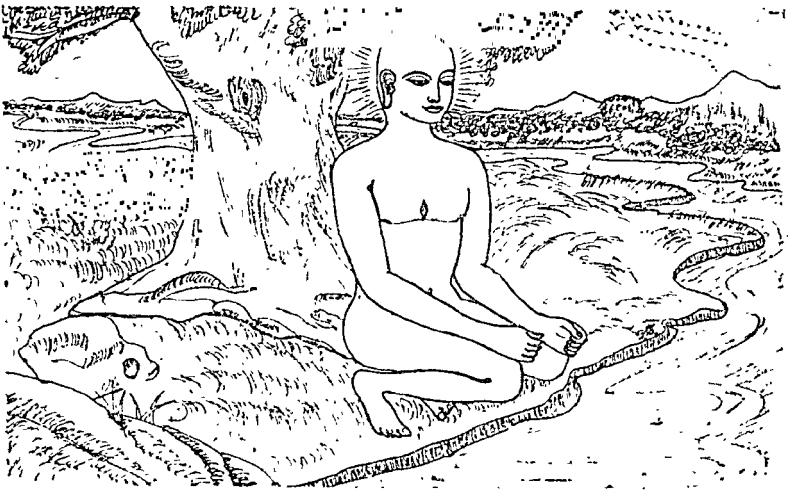
केवलज्ञान की उपलब्धि

जगमग करता सूर्य गगन में विहंस रहा था
महावीर के भीतर-बाहर हुआ उजाला !
मात्र ज्ञान का पुञ्ज बने बैठे ही बैठे,
दशों-दिशाओं में फैला था शुभ्र उजाला।१।

छंटा तिमिर, आलोक भरा था नभ-मण्डल में
सूर्य धरा पर आकर, जैसे वन्दन करता।
'केवलज्ञान' हुआ उपलब्ध 'वीर' को तत्क्षण,
संसृति का हर जीव, उन्हें था वन्दन करता।२।

देव, मनुज, पशु-पक्षी सुख में झूमे सारे
अग्नि, पवन, जल के सब जीव, सुखी थे सारे।
कुल दुनियाँ के जीव, त्राण का अनुभव करते,
स्वर्ग लोक के वासी, हँसते गाते सारे।३।
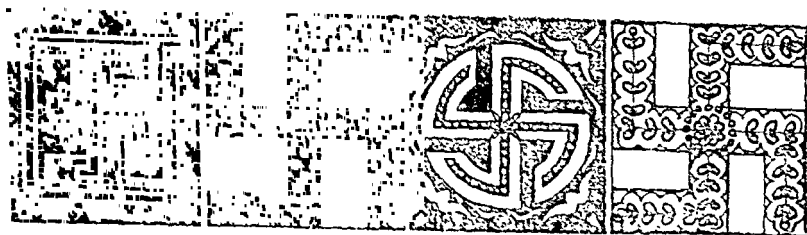
दुन्दुभियों के स्वर से गुञ्जित, अन्तरिक्ष था
मधुर मृदुल स्वर फूट रहे थे, दशों दिशा में।
रंग विरंगे रत्न, और फूलों की वर्षा,
अप्सरियाँ करती फिरती थीं दशों दिशा में।४।

अपापा नगरी

धन्य अपापा नगरी की वह पावन धरती।
धन्य स्वर्ग से बढ़कर दुर्लभ सुखकर धरती।१।

तीर्थंकर की प्रथम देशना हुई जहाँ थी।
अमृत वर्षा सब से पहले हुई जहाँ थी।२।

उस धरती की मिट्टी भी चन्दन से बढ़कर।
उस धरती का पानी, गंगा जल से बढ़कर।३।

जहाँ धर्म की प्रथम देशना, प्रभु ने दी थी।
जहाँ मुक्ति की कुंजी सब को, प्रभु ने दी थी।४।

उस धरती की धूलि शीश पर जो चढ़ जाए।
पतित जीव भी पल भर में ऊपर चढ़ जाए।५।

जन्म-मरण, दुख-रोग, जरा की पीड़ा जाए।
चमक उठे वह मस्तक—जिस पर भी चढ़ जाए।६।

उसके कण कण में रत्नों से बढ़कर आभा।
अघनाशक, कल्याणक, दिव्य-ज्ञान की आभा।७।

भव्य जीव जो उस धरती के दर्शन कर ले।
छुटकारा पा ले जो इसका वन्दन करले।८।

समवशरण-मण्डप
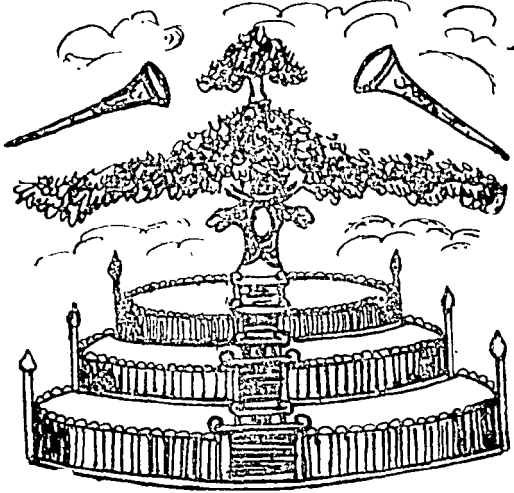
प्रभु का समवशरण-मण्डप था ऐसा उत्तम ।
देवों ने मिलकर निर्माण किया था अनुपम ।१।

ऐसी अद्भुत् रचना कोई कर न सकेगा ।
उसकी तुलना कोई भी तो कर न सकेगा ।२।

सबसे ऊपर सिद्ध सिंहासन शोभा देता,
देव, मनुज, राजा, मुनिजन थे क्रम से बैठे ।
पशु-पक्षी तद्नन्तर अन्य जीव थे बैठे,
केवलज्ञानी प्रभु के समवशरण में बैठे ।३।

× ×

साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका
ये चारों थे जंगम तीर्थ।
उन पर छाया, अरिहन्तों की,
सबके ऊपर सिद्ध-किरीट।४।

× ×

प्रभु के शरणागत थे जीव
समतामय थे सारे जीव।
जीव-जीव के बीच अनोखा,
एक तार था बंधा सजीव।५।

देव, मनुज, तिर्यंच सभी थे
एक भाव में लीन सभी थे
वृक्ष, बेल, पौधे औ–' फूल,
तत्क्षण मन में प्यार सभी के।६।

बाघ-शशक बैठे थे संग
गरुड़-व्याल बैठे थे संग।
दो विपरीत भाव के जीव,
रहे एक पंक्ति में संग।७।

वहाँ न था कोई अभिमानी
नहीं क्रोध का लेश वहाँ।
सबके भीतर नेह, अपरिमित,
साम्यभाव भरपूर वहाँ।८।

तीर्थंकर की धर्मसभा थी
केवलज्ञानी थे बैठे।
मर्यादित थे सभी तत्व औ-'
क्रम से सारे थे बैठे।९।

श्रोताओं को सुलभ रहे जो
ऐसी भाषा थी प्रभु की।
मधुर, मृदुल, संगीतपूर्ण थी,
वाणी, दिव्य रही प्रभु की।१०।

चमत्कारमय छटा वहाँ की
कैसे वर्णन हो उसका।
देव विनिर्मित, अद्भुत् रचना,
शिल्प अनोखा था उसका।११।

●

नारी-मुक्ति एवं समाज का नव-निर्माण

दुःख सहन करती थी नारी, घुट-घुट मरती।
बिकी हुई दासी का जीवन, यापन करती।१।
उसको केवल भोग्य वस्तु का रूप मिला था।
पल-पल गलती सड़ती वह, जीते-जी मरती।२।

उसके लिए द्वार, मुक्ति का बन्द पड़ा था।
पुरुष दबाए हुए शक्ति से, मौन खड़ा था।३।

महावीर ने नारी की पीड़ा को जाना।
उसके अन्तर के दुःखों को था पहचाना।४।

इस समाज का रूप, कलह का कारण देखा।
यह समाज का लँगड़ापन, प्रभु ने था देखा।५।

चटका डाले नारी के हाथों के बन्धन।
मुक्त हुई वह अबला जो करती थी क्रन्दन।६।

चन्दनबाला हुई 'वीर' की पहली शिष्या।
परम्परा को तोड़ा प्रभु ने, जो थी मिथ्या।७।

मुक्ति-पन्थ पर चल निकली थीं कई नारियाँ।
चन्दनबाला की शिष्या हो गईं नारियाँ।८।

बना संघ, श्राविका चली सिर ऊँचा करके।
बढ़ी आर्यिका, श्रमण संघ को वन्दन करके।९।

श्रावक अपने बारह व्रत में बँधा हुआ था।
साधु-धर्म की मर्यादा में बँधा हुआ था।१०।

चार तीर्थ की संज्ञा, प्रभु ने इनको दे दी।
इन चारों की मर्यादा भी निश्चित् करदी।११।

नव-समाज का प्रभु ने गठन किया था ऐसे।
शिल्पकार प्रतिमा को करता निर्मित जैसे।१२।

वर्गहीन था वह समाज, कर्मठ था मानव।
रँग भेद से दूर प्रेम से पूरित मानव।१३।

पर-सेवा का मंत्र दिया था महावीर ने।
स्याद्वाद का पन्थ दिया था महावीर ने।१४।

कर्म से वर्ण
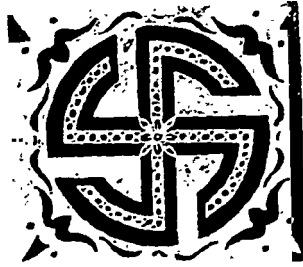
दिया कर्म को ही महत्व, जीवन में प्रभु ने
कर्म, वर्ण का परिचायक ही माना प्रभु ने।
सात्विक-जीवन जीकर, विद्या पढ़े, पढ़ाए,
उसे शुद्ध ब्राह्मण की संज्ञा दे दी प्रभु ने।१।

जो समदर्शी ज्ञान-साधना में रहता हो
दीन-बन्धु ही बनकर जो जग में रहता हो।
परहितकारी शांत, सौम्य जीवन हो जिसका,
वह मुनि है जो, सेवा व्रत में ही रहता हो।२।

क्षात्र धर्म का पालक—जो दुर्बल का रक्षक
वितरण जिसका उत्तम हो, वह वैश्य कहाता।
सेवा व्रत को पूर्ण करे जो, तन वा मन से,
वह जनसेवी हरिजन, सब से बड़ा कहाता।३।

अष्टम् सोपान

ग्यारह गणधर

गौतम गोत्री ब्राह्मण का सुत
'इन्द्रभूति गौतम'[1] विख्यात
'अग्निभूति'[2] के अनुज बन्धु थे
'वायुभूति'[3] जग में विख्यात ।१।

आत्म-तत्व, अनुशीलन - कर्ता
वेद - वचन, उनकी वाणी ।
विद्या-वारिधि- परम् मनस्वी,
पर, स्वभाव से अभिमानी ।२।

दूर - दूर विख्यात नाम था
ज्ञानवन्त, प्रतिपल जिज्ञासु ।
आत्म-तत्व में सदा लीन थे,
'और' जानने को जिज्ञासु ।३।

होने को सम्मिलित यज्ञ में
तीनों बन्धु चले घर से।
'सोमिल' द्वारा रचे यज्ञ में,
शिष्यों संग चले घर से।४।

उन्हीं क्षणों में महावीर प्रभु
समवशरण में थे बैठे।
रत्न-जटित मुक्तावलि गुण्ठित,
उच्चासन पर थे बैठे।५।

थे नर-नारी संग देवगण
समवशरण की ओर चले।
सोमिल-यज्ञ छोड़कर सुर-गण,
जाने क्यों विपरीत चले!६!

जाग उठा अभिमान हृदय में
उनसे बढ़कर कौन हुआ।
कैसे उनसे आगे बढ़कर–
ज्ञानवन्त, सर्वज्ञ हुआ ?९?

उनके संग कई पण्डित थे
वैसे ही ऊँचे ज्ञानी।
किन्तु सभी में जिज्ञासा थी,
कौन हुआ उनसे ज्ञानी।१०।

मन में प्रश्न धारकर बहुविधि
समवशरण में जा पहुँचे।
प्रभु से पाने समाधान, वे–
उनके सम्मुख जा पहुँचे।११।

× ×
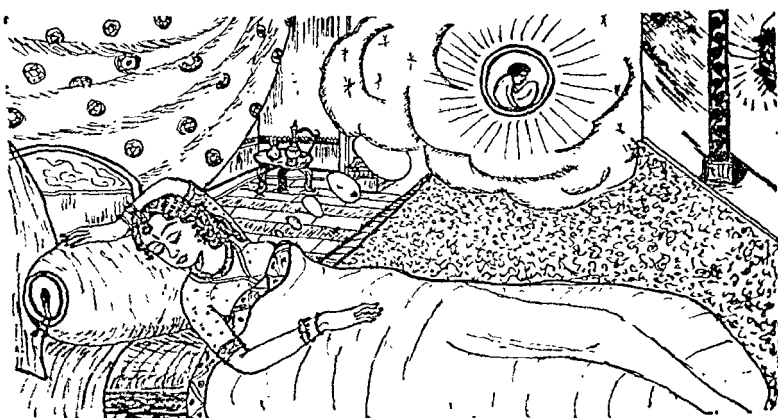
व्यक्त,[4] सुधर्मा,[5] मण्डित,[6] मौर्य[7]
उनके संग, अकम्पित–विप्र,[8] ।
अचल–भ्रात[9] — मैतार्य–गुणी,[10]
थे प्रभास,[11] प्रतिभा में क्षिप्र ।१२।

ये ग्यारह थे उद्‌भट पण्डित
किन्तु ज्ञान के अभिलाषी ।
समाधान हो जाए उनका,
इसके थे वे अभिलाषी ।१३।

ऐसे निर्मल मन के मानव
हों स्वभाव के सरल सदा ।
हो गुणज्ञता, उनके भीतर,
मन से कोमल — तरल सदा ।१४।

महावीर को देखा सबने
देखी समवशरण – रचना ।
प्रथम् दृष्टि में हुए मुग्ध वे,
ऐसी थी अनुपम रचना ।१५।

दृष्टिपात होते ही उनपर
प्रभु ने उन्हें बुलाया था ।
उनके मन की शंकाओं को,
बिन पूछे बतलाया था ।१६।

सब प्रकार के जटिल प्रश्न थे
रहे पण्डितों के मन में।
ज्ञान–चक्षु से देखा प्रभु ने–
उन विद्वद्जन के मन में।१७।

फिर सारे प्रश्नों की व्याख्या–
महावीर प्रभु ने कर दी।
उनके मन की सारी शंका,
दूर, सुगमता से कर दी।१८।

जीव–अजीव औ–' जीव-मुक्ति का
विश्लेषण प्रभु ने करके।
उन सबको दी दिव्य–दृष्टि,
प्रभु ने अतिशय करुणा करके।१९।

परम् सत्य का किया निरूपण
शंकाओं को दूर किया।
सौम्य भाव से उनके मन का–
अन्धकार भी दूर किया।२०।

अर्धमागधी भाषा में ही
प्रभु ने था उपदेश दिया।
जिस वाणी को लोग समझ लें,
उसमें ही संदेश दिया।२१।

गर्व त्याग कर पण्डित जन ने
उनकी शरण ग्रहण कर ली।
मिथ्या मार्ग, छोड़कर उनसे,
दीक्षा तभी ग्रहण कर ली।२२।

ग्यारह के ग्यारह वे पण्डित
महावीर के शिष्य बने।
उनके चरणों के अनुरागी,
ग्यारह गणधर शिष्य बने।२३।

× ×

इन ग्यारह, प्रभु के शिष्यों ने
धर्म–ध्वजा अपने गुरु की–
दृढ़ता से ली थाम हाथ में,
धर्म–धुरी अपने गुरु की।२४।

सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य का
पन्थ इन्होंने खोल दिया।
मनुज–मात्र के लिए मुक्ति का–
द्वार इन्होंने खोल दिया।२५।

इन्द्रभूति गौतम थे इनमें
सबसे ऊँचे आसन पर।
यह गुरु गौतम, सदा विराजें,
सबके हृदय – सिंहासन पर।२६।

अंगूठे में रहता अमृत
लब्धि मिली गुरु गौतम को।
महावीर के सभी उपासक—
सदा झुकें गुरु गौतम को।२७।

किसी कार्य का उद्घाटन हो
गुरु गौतम का लेकर नाम!
यह मंगलमय सिद्धि मंत्र है,
सफल करे सब उत्तम काम!२८!
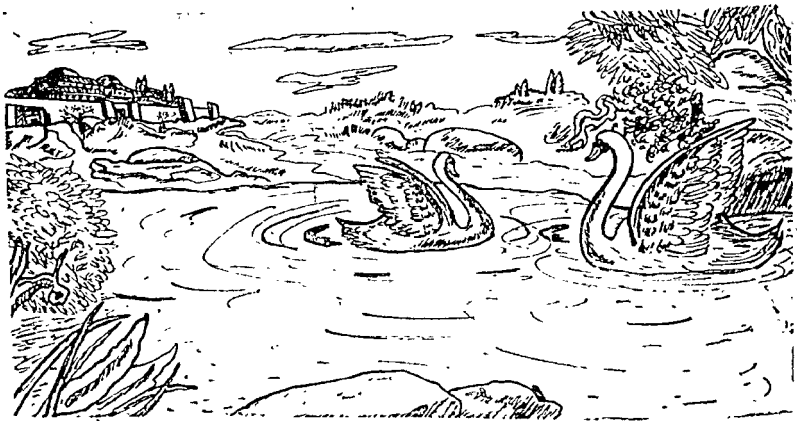
चन्दनबाला का संयम ग्रहण

ग्यारह के ग्यारह गणधर को, उन्हीं क्षणों में
त्रिपद-ज्ञान से किया विभूषित महावीर ने।
'ध्रुव-उत्पाद' और 'व्यय' से संयुक्त किया था,
गणधर पद पर उन्हें बिठाया महावीर ने।१।

× ×

चन्दनबाला सभी जानकर आ पहुंची थी
अपने प्रण को पूरा करने आ पहुंची थी।
केवल-ज्ञानी के चरणों में संयम लेकर—
परम्-साधना करने को, देवी पहुंची थी।२।

महावीर ने उस देवी को संयम देकर
मोक्ष पन्थ की उस पथिका को राह दिखाकर,
नारी के गौरव को था अक्षुण्ण बनाया,
चन्दनबाला को सतियों की मुख्य बनाकर।३।

मेघकुमार मुनि

श्रेणिक-नन्दन, राजकुँवर था 'मेघकुमार'
महावीर का शिष्य बना सुनकर उपदेश।
राजमहल को छोड़, श्रमण का वेश लिया,
ऐसा ही था 'केवलज्ञानी' का उपदेश।१।

किन्तु श्रमण का जीवन होता है दुष्कर
इसको जीना, जीते-जी मरना होता।
काया को तीखे काँटों पर बिछा सके।
ऐसा महावीर कोई बिरला होता।२।

'मेघकुमार' न सह पाए ऐसी पीड़ा
छोड़-छाड़कर वेष, लगे जाने घर को।
कुछ घड़ियाँ ही बिता सके उस जीवन की,
हुए तभी तैयार, लगे जाने घर को।३।

महावीर ने तब कोमलतम् वाणी में
उसका पिछला जीवन उसे सुना डाला।
एक शशक के प्राण बचाने के क्रम में,
गज होकर, तन अपना वहीं सुखा डाला।४।

उस बलिदानी गज की कथा पुरानी है
परहितकारी कैसे आत्मदान करता।
प्राण बचाते हुए किसी के, स्वयं अरे—
जीवन अपना निसंकोच अर्पण करता।५।

× ×

वन में आग लगी थी, लपटें भड़क उठीं
सारे का सारा वन, पावक-कुण्ड हुआ,
उस हाथी ने ज्यों ही पाँव उठाया था,
एक शशक आ बैठा था, भयभीत हुआ।६।

हाथी ने उसके नन्हें प्राणों को देख
करुण-भाव से पाँव वहीं था टिका लिया।
कई घड़ी तक खड़ा रहा वह वैसे ही,
स्वयम् कष्ट सहकर भी उसको बचा लिया।७।

अग्नि हुई थी शांत, शशक था भाग गया
पर, गज अपना पाँव न नीचे धर पाया।
टाँग अकड़कर प्राणहीन थी बनी हुई,
वह उसको धरती पर टिका नहीं पाया।८।

कटे पेड़-सा गिरा लुढ़क कर उसी समय
भूखा-प्यासा और तड़पता रहा पड़ा।
कुछ घड़ियों के बाद देह निर्जीव हुई,
बलिदानी के तन से पावन हुई धरा।९।

उस गज का ही जीव, 'मेघ मुनि' था तब का
श्रेणिक राजा के घर में था जन्म लिया।
और पुण्य का उदयकाल था भारी तब,
जो प्रभु के हाथों से संयम ग्रहण किया।१०।

महावीर से सुनकर पिछला भव अपना
हुआ मेघ मुनि सजग, चेतना जाग उठी।
प्रभु चरणों में प्रीत जगी, आलस्य छंटा,
फिर से उसकी धर्म भावना जाग उठी।११।

'प्रसन्न चन्द्र मुनि' को केवलज्ञान
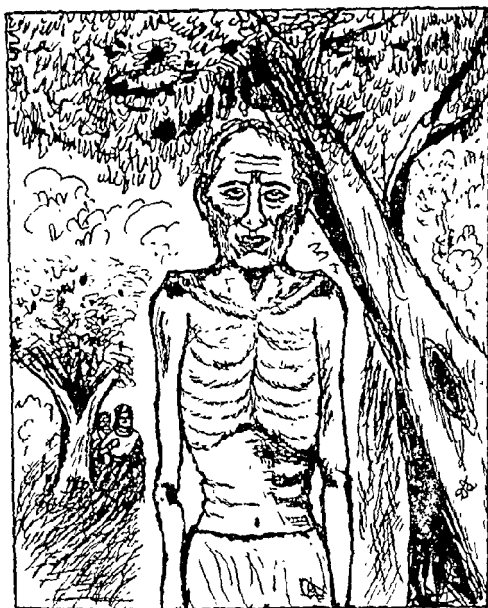
था 'प्रसन्न मुनि' लीन, साधना के क्रम में
उसे याद आ गई, पुत्र–' पुत्री, घर की।
समाचार पाकर मुनि, विचलित हुआ तभी,
कैसी दुर्गति होगी, बिन उसके सबकी।१।

वह 'पोतन' का राज छोड़कर श्रमण बना
पश्चाताप हृदय में उसके जाग उठा।
देह भले ही वहीं खड़ी, सूने वन में,
किन्तु हृदय तत्काल छोड़कर भाग उठा।२।

अपने मन्त्रीगण पर क्रोध उमड़ आया
उन्हें दण्ड देने की मन में बात उठी।
वह भीतर ही भीतर लगा उबलने-सा
उसकी नस-नस में ज्वाला-सी जाग उठी।३।

उसी समय श्रेणिक राजा थे प्रभु के पास
उस मुनि को वन्दन करके वह पहुँचे थे।
वह 'प्रसन्न मुनि' के तप की स्तुति करते ही,
महावीर के श्रीचरणों में पहुंचे थे।४।

उस तापस के लिए जानने की इच्छा
श्रेणिक के मन में तत्काल प्रबल जागी।
ऐसी घोर तपस्या का फल क्या होगा?
यह जिज्ञासा राजा के मन में जागी।५।

सुनकर प्रभु ने प्रश्न, बताया श्रेणिक को,
"वह तापस, इस समय, नरक का भागी है।
यद्यपि घोर तपस्या करके सूख गया,
पर मन में प्रतिहिंसा उसके जागी है"।६।

नृप को देखा मौन—चकित, तो उस प्रभु ने
ऊपर की सब बात उसे फिर बतलाई।
एक-एक घटना पर निर्णय दे डाला,
तापस के मन की दुर्बलता बतलाई।७।

ऐसे ही बीता कुछ काल उसी स्थिति में
तभी सुने कुछ मंगलमय स्वर श्रेणिक ने।
दुंदुभियों के स्वर थे–शंखों की ध्वनि थी,
सुने बांसुरी के मीठे स्वर श्रेणिक ने।८।

महावीर ने नृप की जिज्ञासा जानी
बोले, "केवलज्ञान हुआ उस तापस को।
जो 'प्रसन्न मुनि' देखा था तुमने राजन्,
यह उपलब्धि हुई है, अब उस तापस को"।९।

× ×

"उसी क्रोध की स्थिति में तापस विकल हुआ
तभी हाथ पहुँचा था उसका, मस्तक पर।
वहाँ मुकुट की जगह मुंडा सिर पाया था,
छोटे-छोटे बाल उगे थे मस्तक पर।१०।

उसी समय तापस को अपना ज्ञान हुआ
अपने मुनि जीवन पर, उसका ध्यान गया।
भीतर बैठा क्रोध, उसी क्षण लुप्त हुआ,
मुनि का अपने घोर पतन पर ध्यान गया।११।

मुनि ने पश्चाताप किया उस चिन्तन पर
वह तत्काल सम्हलकर, तप में लीन हुआ।
मन के सभी कषायों पर अधिकार किया,
आत्म-सिद्धि में वह तापस, तल्लीन हुआ।१२।

घाती कर्म खपाकर यह उपलब्धि हुई
केवलज्ञान–विभूषित उसका जीव हुआ।
राजन्! यह है, दिव्य साधना की महिमा,
महामोक्ष का अधिकारी वह जीव हुआ"।१३।

अर्जुन माली की मुक्ति

अर्जुन माली, राजगृही नगरी के पास
रहता था अपनी सुन्दर पत्नी के संग।
दोनों फूल तोड़कर थे बेचा करते,
रहते-खाते, चलते-फिरते दोनों संग।१।

× ×

अर्जुनमाली की उस पत्नी के नख-शिख
स्वयम् खींच लेते, दर्शक की आँखों को।
वह उड़ती फिरती, चञ्चल-सी तितली थी,
उपवन में फैलाकर अपने पाँखों को।२।

× ×

नियमित ही वह दम्पति जा—श्रद्धा के साथ
एक यक्ष की पूजा सेवा था करता।
चुने हुए कुछ रंग-बिरंगे फूलों से,
प्रतिदिन उसका वन्दन पूजन था करता।३।

एक दिवस, अर्जुन अपनी पत्नी के संग
यक्षालय में गया अर्चना करने को।
छः कामुक गुण्डों ने उसे दबोच लिया,
रस्ता साफ किया, मनमानी करने को।४।

अर्जुन की पत्नी थी उनका लक्ष्य बनी
उस अबला का शील उन्होंने भंग किया।
बारी-बारी नर-पिशाच उन दुष्टों ने,
रही चीखती, उस युवती का संग किया।५।

अर्जुन की पीड़ा का वर्णन कौन करे
कोने में जकड़ा बैठा था, विवश बना।
तभी गया फिर ध्यान यक्ष की प्रतिमा पर,
जो लकड़ी में बन्द पड़ा था, विवश बना।६।

वह बोला, तब रोष भरे स्वर में उसको
"ओ लकड़ी के देव, न तुम कुछ कर सकते।
लौटा दो वह पूजा, जो हमने की थी,
तुम हो एक खिलौना, तुम क्या कर सकते" ?७?

× ×

वह लकड़ी का यक्ष, छोड़कर प्रतिमा को
अर्जुन की काया में जैसे पैठ गया।
चटका डाले बन्धन, झटके से तत्काल,
अर्जुन हो स्वाधीन, वहीं पर बैठ गया।८।

फिर उसने उस यक्ष-मूर्ति का ही मुग्दर—
लिया हाथ में, और महाविकराल बना।
ताल ठोंक कर उठा, झपटकर—गर्जन कर,
उन सब के सब गुण्डों का वह काल बना।९।

और अन्त में, भ्रष्ट हुई पत्नी को भी
कुचल दिया मुग्दर से, उसने तभी वहीं।
औ-' प्रतिदिन छः पुरुष और इक नारी का,
वध कर देने का प्रण, उसने किया वहीं।१०।

यह प्रण, उसका चला कई दिन तक ऐसे
सात जनों की हत्या प्रतिदिन था करता।
उसके बाद कहीं जाकर वह उपवन में,
भोजन, अपना स्वयं बनाकर था करता।११।

दूर-दूर तक समाचार यह फैल गया
कोई उस उपवन की ओर न जाता था।
अर्जुन माली के डर से कोई भी तो,
दृष्टि नहीं उस ओर उठा भी पाता था।१२।

× ×

इन्हीं दिनों कुछ दूर पधारे महावीर
वही मार्ग था, उन तक जाने आने का।
सेठ सुदर्शन, प्रभु-चरणों में लीन हुए,
दर्शन करने चले, न भय मर जाने का।१३।

अर्जुन ने देखा उनको औ-' गरज उठा
मुग्दर लेकर उन्हें मारने को दौड़ा।
सेठ सुदर्शन ध्यान लगाकर बैठ गए,
और देह का मोह, उन्होंने था छोड़ा।१४।

अर्जुन आया, दैत्यराज सा बना हुआ
उसने मुग्दर उठा—हवा में लहराया।
किन्तु हुआ वह चकित, न मुग्दर मार सका,
हुआ हाथ वह पत्थर, जो था लहराया।१५।

यत्न किया उसने पर, हाथ न मुड़ पाया
सेठ सुदर्शन बैठे थे चुपचाप वहाँ।
लगा घुमाने, ऊपर ही ऊपर मुग्दर,
पर ऐसे में कर पाए वह चोट कहां ?१६?

मुग्दर घुमा घुमाकर था वह चूर हुआ
उसके भीतर बैठा यक्ष पराजित था।
लज्जित होकर उसे छोड़कर भाग गया,
अर्जुन गिरा धरा पर, हुआ पराजित था।१७।

कुछ पल बीते, उठा, क्षमायाचन करता
सेठ सुदर्शन के चरणों में लोट गया।
किए हुए दुष्कर्मों का चिन्तन करके,
रोते रोते, पुनः वहीं पर लोट गया।१८।

तब दोनों में बात चली धीरे धीरे
उसने पहली बार सुना था प्रभु का नाम।
महावीर की महिमा सुनकर पहली बार,
उसके मुख पर चढ़ा तुरत वह पावन नाम।१९।

भव्य जीव था, घोर पाप से लौट पड़ा
हिंसा की प्रवृत्ति दूर हो गई तभी।
महावीर प्रभु के दर्शन का इच्छुक बन,
मनोभावना, निर्मल थी हो गई तभी।२०।

सेठ सुदर्शन ने उस नर-हत्यारे को
करुणा करके धर्म-द्वार पर खड़ा किया।
महावीर के पावन, निर्मल चरणों का,
सदा सदा के लिए, उपासक बना दिया।२१।

× ×

प्रभु ने उसको श्रमण संघ में मिला लिया
अपने ही हाथों से संयम दे डाला।
मुनि का दुर्लभ वेष, भाग्य से है मिलता,
वही वेष, प्रभु ने था—उसको दे डाला।२२।

उसने भी मर्यादा रख ली उस पद की
तप सेवा में लीन हुआ पूरे मन से।
सत्य अहिंसा और क्षमा को धारण कर—
कठिन साधना—लीन हुआ वह तन मन से।

× ×

अर्जुन मुनि जब गए नगर में भिक्षा को
लोगों ने उन पर थे पत्थर दे मारे।
यद्यपि अर्जुन, आज हुए थे मुनि अर्जुन,
तो भी दुश्मन, उन्हें मानते थे सारे।२४।

अर्जुन मुनि ने, वह अपमान सहा चुपचाप
शीश झुकाए—चलते चले उसी पथ पर।
पाप कर्म का निपटारा वह सहज लगा,
वह थे उस पल, कर्म—निर्जरा को तत्पर।२५।

यही भर्त्सना, उनकी बनी कसौटी थी
उस पर खरे उतर कर—वह जग जीत गए।
कठिन साधना और तपस्या के पश्चात्,
अर्जुन मुनि, अपने जीवन को जीत गए।२६।

इसी भांति दुष्कर्म काटकर मुनि अर्जुन
बढ़ते गए निरन्तर—उस दुर्गम पथ पर।
पिण्ड छुड़ाकर, कर्म और उसके फल से,
जा पहुंचे आखिर वह परम उच्च पद पर।२७।
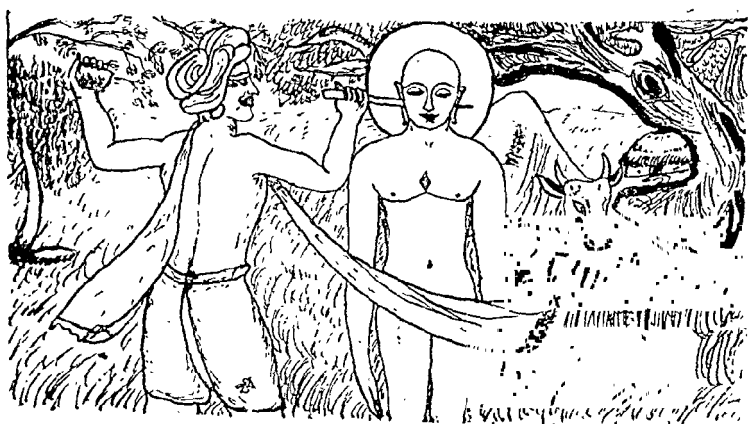
शालिभद्र (पूर्व भव)

दीन-हीन माता का बेटा संगम था।
उसकी माता, ऊँचे कुल की देवी थी।
किन्तु समय के साथ, हुई वह दीन-दुखी,
फिर भी उत्तम शीलवती, वह देवी थी।१।

संगम, गैया-बैल चराया करता था
बड़े यत्न से उदर-पालना, थी होती।
धन्या माता, उसे खिला देती सारा,
जल पीकर प्रायः, वह भूखी थी सोती।२।

एक बार जैसे तैसे, उस माता ने
खीर बनाई, अपने बालक के हठ पर।
खीर परसकर माता ने, थाली भर दी,
और वहां से चली गई, झट से उठकर।३।

बालक ने परसी थाली की खीर सकल
दे डाली उल्लसित भाव से उसी समय।
जन्म-जन्म के कर्म-बन्ध, उस बालक ने—
काट लिए चुपचाप, दान से उसी समय।५।

शालिभद्र के रूप में

इसी पुण्य के फल-स्वरूप, अगले भव में
वह बालक, गोभद्र सेठ के घर आया।
सुख वैभव से लदे हुए, उसके घर में,
जन्म लिया औ–' 'भद्रा-नन्दन' कहलाया।१।

शालिभद्र, रख दिया नाम, उस बालक का
जन्मोत्सव था चला नगर में, कई दिवस।
सेठानी ने हृदय खोलकर दान दिया,
राग रंग में लीन रहे, सब कई दिवस।२।

जब यौवन के प्रथम चरण पर बालक ने
पांव धरा तो मन की कलियाँ, मुस्काईं।
और सुघरता, उसके उठते यौवन की–
चुपके चुपके देख, तरुणियां शर्माईं।३।

शालिभद्र थे, राजगृही के नगर सेठ
स्वर्ण-मोहरों से था, उनका कोष भरा।
दूर-दूर तक, उनकी हुण्डी भुनती थी,
करते थे, वह कोई भी व्यापार खरा।४।

नगरी के राजा से बढ़कर वैभव था
दास दासियों की सेना महलों में थी।
राग-रंग-रस, यौवन से पूरित जीवन,
इन्द्रलोक की सुविधा, उन महलों में थी।५।

परम् रूपसी बत्तीस् पत्नी सेवा में
हरपल रहकर, उसका मन बहलाती थीं।
अपने गोरे-गोरे कोमल हाथों से,
वीच-बीच में काया को सहलाती थीं।६।

शालि सेठ खोए थे, उनकी माया में
आँख बन्द कर आठों पहर बिता देते।
कब दिन चढ़ता और डूबता, पता नहीं,
इसी मोह में अपना समय बिता देते।७।

× ×

महावीर, नगरी के बाहर उन्हीं दिनों
अपने शिष्यों के संग, आन पधारे थे।
शालि–सेठ का पुण्य प्रबल था, यही कहो,
उसे मुक्ति देने को नाथ पधारे थे।८।

मोह नाश कर देने वाली दिव्य दृष्टि—
प्रभु की, जाकर पड़ी, शालि की काया पर।
निमिष मात्र को देखा, प्रभु ने आंखों में,
दृष्टि गाड़ दी, छिपकर बैठी माया पर।९।

अगले ही पल शालिभद्र के अन्तर में,
मोह नाश कर देने वाली ज्योति जगी।
भीतर की नस-नस थी जैसे तड़क उठी,
मुक्ति मार्ग पर चल देने की चाह जगी।१०।

× ×

महलों में लौटे, मन में निश्चय करके
पराधीनता के बन्धन चटकाएँगे।
सभी कषायों से छुटकारा पाकर ही—
वह स्वतंत्रता के पथ पर चल पाएँगे।११।

एक-एक रानी को क्रम से छोड़ेंगे
बत्तीस दिन के बाद दीक्षा ले लेंगे।
इसी समय में निपटा लेंगे सभी काम,
और दीक्षा, प्रभु से जाकर ले लेंगे।१२।

उनकी बहिन, सुभद्रा भी थी वहुत दुखी
अपने भाई की ममता में खोई थी।
उसने रोते-रोते अपनी आंखों से,
आंसू की माला चुपचाप पिरोई थी।१३।

उसकी भी ससुराल, उसी नगरी में थी
सेठ धनाऊ उसके पति परमेश्वर थे।
कोटि-कोटि धन, स्वर्ण–रत्न, मोती माणिक,
इन सबके एकाकी बने अधीश्वर थे।१४।

धनाऊ सेठ का पराक्रम
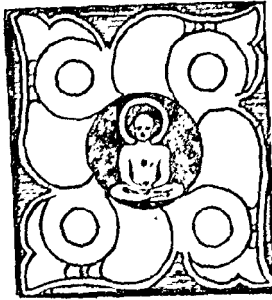
बात जानकर पत्नी से, उसके भाई की
सेठ धनाऊ, सहज भाव में उससे बोले,
"तेरा भाई तो कायर है मेरी रानी–
जो डर–डर कर एक-एक ग्रन्थी को खोले।१।

एकबार जब तज देने को सोच लिया था
तो तज देना ही था, निमिष-मात्र में उनको।
बत्तीस दिन के बाद न जाने क्या हो जाए,
जो करना था, कर लेना था तब ही उनको"।२।

इस पर बोली पत्नी उनकी जरा व्यंग में
"कहने से करना मुश्किल है, मेरे स्वामी !
भैया तो सब छोड़-छाड़कर चल ही देंगे,
आप दिखाओ जरा छोड़कर मेरे स्वामी" !३!

यह सुनना था, सेठ धनाऊ उठकर बैठे
काया पर से आभूषण तत्काल उतारे ।
और खड़े होकर फिर बोले मीठे स्वर में,
"धन्य देवि ! तुमने तो मेरे नयन उघारे।४।

मैं आभारी हूँ तेरा, महलों की रानी
तुमने ठीक समय पर मुझको जगा दिया है।
ज्योति जगाकर मेरे भीतर, आभा कर दी,
मुझे मुक्ति का मार्ग, सहज ही दिखा दिया है" ।५।

सेठ धनाऊ, लगे पैर बाहर धरने को
अब रानी पछताई-आँखें बरस रही थीं ।
चरण पकड़कर स्वामी के वह सिसक रही थी,
मोती की लड़ियां नयनों से बरस रही थीं।६।

पर, अब सेठ धनाऊ, निश्चय कर बैठे थे
बिन बोले ही चले, मोह माया को तज कर।
जैसे कोई वीर सिपाही, युद्ध भूमि में,
चल पड़ता है, शत्रु-विजय करने को सजकर।७।

उसने जाकर अपनी पत्नी के भाई को
ऊँचे स्वर में नीचे से ही तभी पुकारा।
घर के जामाता को ऐसे खड़ा द्वार पर—
देखा, तो हो गया चकित, दरबान बिचारा।८।

शालिसेठ को मिली सूचना दरबानों से
बहनोई की अगवानी करने को आया।
किन्तु देखकर, बहनोई का वेष पुराना,
अस्त-व्यस्त हो गया—हृदय में था घबराया।९।

आशंकित मन, व्याकुलता में डोल रहा था
अनहोनी घटना के भय से काँप उठा वह।
जिसके चरण न छू पाए थे, अब तक धरती,
उसे बिना वाहन के देखा काँप उठा वह।१०।

सेठ धन्नाऊ, बिना भूमिका के ही बोले,
"बत्तीस दिन की देर कहो, क्यों करते, भैया!
अगर छोड़कर जाने का निश्चय कर डाला,
चलो संग मेरे, चलता हूं मैं भी भैया।११।

एक साथ जाएँगे, संयम ले डालेंगे
महावीर प्रभु के चरणों से लग जाएँगे।
कट जाएगा मोह, कटेंगे भव के बन्धन,
पाप पुण्य की उलझन से हम बच जाएँगे।१२।

शालिभद्र ने सुने वचन जो, बहनोई के
पल भर भी तो नहीं गंवाया भव्य जीव ने।
जो पग आगे बढ़ा न पीछे लौटाया तब,
पीछे नहीं पलट कर देखा भव्य जीव ने।१३।

× ×

दोनों ही चुपचाप खड़े थे, प्रभु के सम्मुख
केवल ज्ञानी से अज्ञात नहीं था कुछ भी।
दोनों के तरने की बेला, आ पहुंची थी,
दोनों के मन में तब और नहीं था कुछ भी।१४।

महावीर ने करुणा करके, उन दोनों पर
संयम के अक्षय वैभव का दान दे दिया ।
दोनों ने प्रभु के चरणों में मस्तक टेके,
तापस का जीवन वैसे ही सहज ले लिया ।१५।

पञ्च महाव्रत धारण करके, उन दोनों ने
तप की ज्वाला में दहकाया अपने तन को ।
पल-पल गहरे चिन्तन में ही बीत रहा था,
एक लक्ष्य पर जमा लिया था, अपने मन को ।१६।

इसी बीच गुरु की आज्ञा से दोनों तापस
शालि सेठ के घर पर भिक्षा लेने आए ।
वहाँ उन्हीं के दरवानों ने परिचय पूछा,
वे दोनों थे मौन—न कुछ उत्तर दे पाए ।१७।

आगे चलकर मिली एक ग्वालिन थी पथ पर
उसने अपना दही दूध, उनको वहराया ।
शालिभद्र, जो गत जीवन में, उसका सुत था,
देख उसे—मन में था प्यार उमड़ कर आया ।१८।

विपुला गिरि पर जाकर फिर दोनों श्रमणों ने
प्रभु की आज्ञा लेकर—सन्थारा कर डाला ।
घाती कर्म बचे थे–जो उनके जीवन में,
घोर तपस्या करके, क्षय उनका कर डाला ।१९।

भव–बाधा से, पुण्यवान वह सेठ धनाऊ
मुक्त हुए तद्नन्तर अपनी देह त्याग कर !
शालिभद्र जा पहुँचे, ऊपर देवलोक में,
परम् दुःखमय इस दुनियाँ को गए त्यागकर !२०!

'उदक श्रमण' का प्रभु-चरणों में आत्म-समर्पण

राजगृही के पास, एक था वन अभिराम
'हस्तियाम' था उसका पावन सुन्दर नाम।
पार्श्वनाथ प्रभु की सन्तति के एक श्रमण;
उसमें रहे विराजित—'उदक श्रमण' था नाम।१।

गौतम गणधर से उनकी जब भेंट हुई
धर्म तत्व में शंका पर; चल दी बातें।
गौतम स्वामी का विश्लेषण ऐसा था,
शंका दूर हुई, उनकी सुनकर बातें।२।

उदक श्रमण ने गौतम गुरु का संग किया
जा पहुंचा प्रभु महावीर के चरणों में।
शंकाहीन हृदय, तापस का उस पल था,
लौट गया वह शिष्यभाव से चरणों में।३।

गोशाला का अन्त

श्रावस्ती नगरी में गोशाला तापस
कई तरह के कौतुक, दिखलाया करता।
प्रबल बना, अष्टांग योग से पाखण्डी,
दुरुपयोग, उपलब्ध सिद्धि का था करता।१।

तेजोलेश्या-शक्ति रही जो भीतर थी
वह अभिमानी, उसको नहीं पचा पाया।
अपने में ही बना जिनेश्वर फिरता था,
पतित, हृदय को पावन नहीं बना पाया।२।

वहीं निकट में, केवलज्ञानी महावीर
जनता को प्रतिदिन, उपदेश दिया करते।
प्रतिदिन उनकी महिमा थी बढ़ती जाती,
नर-नारी उनका अभिनन्दन थे करते।३।

भरी सभा में गौतम गुरु ने वन्दन कर
विनयपूर्ण, वाणी में किया निवेदन था।
गोशाला जो बना, जिनेश्वर था फिरता,
समाचार कुल उसका, किया निवेदन था।४।

प्रभु ने शांत भाव से इस पर बतलाया
"वह गोशाला, पहले उनका शिष्य रहा।
कर्महीन वह तापस, भूल गया गुरु को,
चलकर वह विपरीत, सदा ही भ्रमित रहा।५।

वह, जिनेन्द्र या सिद्ध नहीं है हो सकता
वह अपने को धोखा देता है प्रतिपल।
खेल-तमाशा दिखलाने वाला योगी,
गिरता जाता, ऐसे ही नीचे पल पल"।६।

प्रभु के उत्तर से जिज्ञासा शांत हुई
गौतम स्वामी, वन्दन करके बैठ गए।
उनके मन की सारी शंका दूर हुई,
अन्य लोग भी, तुष्ट भाव से बैठ गए।७।

× ×

समाचार गोशाला ने भी जान लिया
पहुँचा प्रभु के पास, क्रोध में जल-भुनकर।
उसकी काया में अंगारे फूट पड़े,
धर्म सभा में खड़ा हुआ था, वह डटकर।८।

उसने प्रभु को ऊँचे स्वर में ललकारा
आँखें उसकी लाल सुर्ख अंगारे थे।
क्रुद्ध सिन्धु ने अपनी फेनिल लहरों में,
ज्यों पलभर में, तोड़े सभी कगारे थे।९।

बोला, "ओ कश्यप, तेरा इतना साहस
तू मेरी निन्दा ही करता है रहता।
देखूँ, मुझ से द्वेष पालकर तू कैसे,
इस धरती पर, पल भर जीवित है रहता?१०?

तू मेरे भीतर के बल को क्या जाने?
फूंक मार कर, तुझको भस्म बना दूंगा।
पल भर में ही, तेरी झूठी माया को,
धरती पर से मैं तो अभी हटा दूंगा"।११।

ये सब, प्रभु के दो शिष्यों को बुरा लगा
उनके मुख से, कुछ कठोर निकली वाणी।
इस पर भड़की क्रोध-ज्वाल, उसके भीतर,
कण्ठ रुद्ध हो गया, रुकी उसकी वाणी।१२।

अगले ही पल, गोशाले ने मुँह खोला
ज्वाला लपकी, प्रभु के दोनों शिष्यों पर।
आँख झपकते, भस्म हुए दोनों तापस,
जैसे गाज गिरी—उन दोनों शिष्यों पर।१३।

फिर वह प्रभु से बोला गर्वीले स्वर में,
"देखो कश्यप, यह मेरे तप की महिमा।
मुट्ठी-भर यह धूल पड़ी इन श्रमणों की—
देखो मेरे अक्षय तप की है गरिमा"।१४।

महावीर प्रभु स्वस्थ चित्त से ही बोले,
"गोशाला, अब भी अवसर है, सम्हल ज़रा।
गुरु-द्रोही, अविवेकी बनकर क्या होगा ?
तू भविष्य को देख, समय है, सम्हल ज़रा।१५।

क्रोध, मान, माया में तू तो फंसा हुआ
जीव तुम्हारा, कर्मबन्ध करता जाता।
कर्मबन्ध से मुक्त न होकर उलटा तू,
दलदल में भीतर को ही धंसता जाता"।१६।

इतना सुनकर क्रोध बढ़ा गोशाला का
पाँव पटककर धरती पर, वह गरज उठा।
मुख से उसके शोला निकला, उसी समय,
अहंकार में फिर से तापस गरज उठा।१७।

किन्तु सामने, महावीर तो शांत रहे
तेजोलेश्या, उन पर क्या प्रभाव करती।
तन के चारों ओर घूमकर लौट चली,
केवलज्ञानी को जैसे वन्दन करती।१८।

तेजोलेश्या लौटी, तापस घबराया
उसके भीतर आग लगी, वह तड़प उठा।
अग्नि-पुन्ज, उसके ही भीतर समा गया,
एक बार गोशाला, फिर से तड़प उठा।१९।

पीड़ा से व्याकुल था, फिर भी बोल उठा
"यद्यपि मेरा विफल हुआ आक्रमण अभी।
पर कश्यप ! छः मास तुझे बस जीना है,
मुझको याद करेगा, उस पल अरे तभी" ।२०।

महावीर ने सरल भाव से कह डाला
"सोलह वर्ष, अभी तो मेरा जीवन है।
किन्तु सातवें दिन, तुझको जाना होगा,
कुल इतना ही शेष तुम्हारा जीवन है"।२१।

लौट गया गोशाला, गिरता पड़ता-सा
भीतर से जलता-भुनता ही चला गया।
देह तड़क कर टूट रही थी आतप से,
कुछ विचारता हुआ वहाँ से चला गया।२२।

ठीक सातवें दिवस, मौत से कुछ पहले
जगी चेतना, गोशाले की एक बार।
पश्चाताप लगा होने, उसको तब तो,
जाग उठा सम्यक्त्व हृदय में एक बार।२३।

अन्तिम क्षण में शिष्यों से बोला तापस
"जीवन की अन्तिम वेला है आ पहुँची।
समय नहीं है शेष, कि चिन्तन भी कर लूँ,
अब तो जाने की वेला है आ पहुंची।२४।

मेरा सारा जीवन, पाप कहानी है
मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ—दम्भी, पापी हूँ।
महावीर स्वामी का शिष्य पुराना हूँ,
गुरु-द्रोही, अविवेकी, कपटी पापी हूँ।२५।
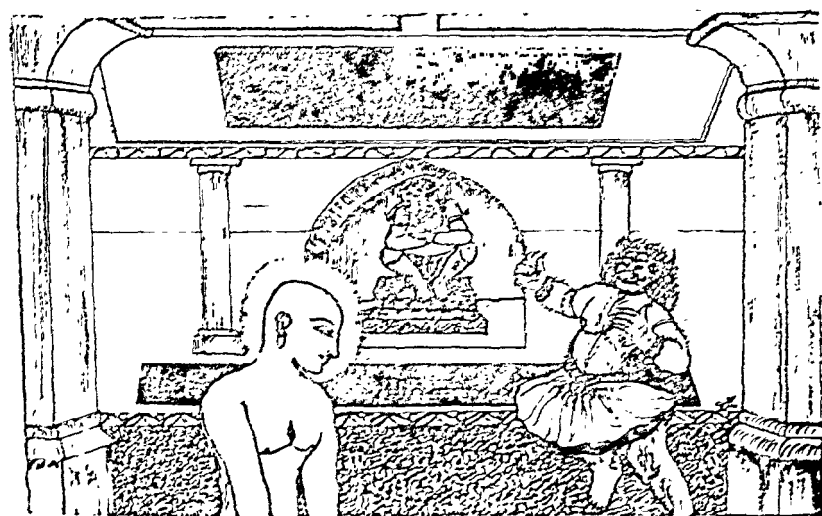
मेरे गुरु तो केवलज्ञानी महावीर
वह अरिहन्त देव तो परम् दयामय हैं।
तुम सब, उनकी सेवा में ही जा पहुँचो,
वह स्वभाव से कोमलतम्, करुणामय हैं"।२६।

इतना कहकर गोशाला ने देह तजी
अन्तिम क्षण में भीतर निर्मलता आई।
इसी पुण्य के बल पर जीव उठा ऊपर,
उसने जाकर, तभी देव की गति पाई।२७।

नवम् सोपान

निर्वाण क्या ?

स्वर, शब्द, तर्क, उपमाएँ
अस्तित्वहीन हो जातीं।
श्रुत से भी आगे बढ़कर,
जिज्ञासा में खो जातीं।१।

कुछ देख सके, तो चलकर
कुछ अनुभव तो कर डाले।
बिन देखे, कोई कैसे,
अन्तिम निर्णय कर डाले ?२?

शब्दों का जाल अनोखा
अनुभूति-हीन है रहता।
चखने से अनुभव करता,
बिन चखे, स्वाद क्या कहता ? ३?

निर्वाण, अरूपी—सत्ता
इसको कोई क्या जाने ?
परदे में छिपे हुए को,
कोई कैसे पहचाने ?४?

पट बिना उठाए कैसे
यह दृष्टि-भेद मिट सकता ?
करके प्रयास, कुछ अद्भुत्—
बस, यह रहस्य, मिल सकता।५।

आँखों पर छाया जाला
कोई तो आन उठाए।
कोई तो साहस करके,
रस्ते में दीप जलाए।६।

अन्धे को आँखें देना
कहते हैं, पुण्य बड़ा है।
जो दृष्टि-दान कर डाले,
उससे फिर कौन, बड़ा है।७।

वह जन्मजात था साधक
उपलब्धि भरा था जीवन।
निर्भीक बढ़ा वह पथ पर,
अनुपम था, उसका जीवन।१०।

अनुभव करके ही देखा
यह परम सूत्र था उसका।
निर्वाण प्राप्त कर डाला,
यह परम लक्ष्य था उसका।११।

वह दिव्य चक्षु का दाता
अन्धों की आँख बना था।
जीवों को राह दिखाकर,
जगतारक, स्वयम् बना था।१२।

प्रभु की अन्तिम देशना

परहितकारी महावीर पावापुर में
अन्तिम चौमासा करने को आए थे।
नर-नारी ने मिलकर, उनके स्वागत में,
तरह तरह के मीठे गीत सुनाए थे।१।

यह निर्वाण-साधना के थे शेष चरण
केवल चार कर्म बाकी थे जीवन में।
आयु कर्म की डोरी में थे बंधे हुए,
वही कर्म पूरा करना था, जीवन में।२।

कार्तिक मास अमावस्या की निशा रही
इन्द्र और नृप, सुरगण, श्रावक थे बैठे।
प्रभु ने मुखरित होकर, तब उपदेश दिया,
विहगों ने भी सुने वचन, तरु पर बैठे।३।

थोड़े ही शब्दों में प्रभु ने ज्ञान दिया
सबकी दृष्टि जमी थी, उनके ही मुख पर।
छाई थी निर्वेद भावना, कण कण में,
पूर्ण शांति हो रही विराजित थी मुख पर।४।

तदनन्तर गौतम गणधर ने वन्दन कर
प्रभु से प्रश्न किए फिर, उत्तर भी पाया।
धर्मतत्व का विश्लेषण करके प्रभु ने,
उसे सभी तत्वों से परिचित करवाया।५।

संघ व्यवस्था, धर्म साधना की बातें
इन्द्रभूति गौतम को फिर से समझाई।
उनके ही कन्धों पर इसका बोझ धरा,
देशकाल परिस्थिति की बातें बतलाई।६।

तब गौतम गणधर को फिर आदेश दिया
बोले, "गौतम, तुम्हें अभी जाना होगा!
देव नाम का ब्राह्मण रहता है कुछ दूर,
तुम्हें धर्म-सन्देशा, पहुंचाना होगा"!७!

गौतम प्रभु थे बंधे हुए अनुशासन में
गुरु की आज्ञा पाकर चले गये तत्काल।
यद्यपि मन में उनके चिन्ता थी भारी,
देख रहे थे, प्रभु-जीवन का सन्ध्या काल।८

उसी रात की शेष बची कुछ घड़ियों में
प्रभु ने जगकल्याणक रचना कर डाली।
सदा सदा के लिए मुक्ति का द्वार खोल,
उचित व्यवस्था शासन की थी कर डाली।९।

तभी इन्द्र आये थे उनके चरणों में
समय निकट था, प्रभु के ऊपर जाने का।
कुछ ही पल तो शेष रहे थे, खाते में,
आ पहुँचा था समय, परम पद पाने का।१०।

प्रभु को थोड़ा और रोकने की इच्छा
इन्द्रदेव के मन में तभी समाई थी।
मोहजन्य थी बात, नाथ से क्या छिपती,
उनके जाने की बेला तो आई थी।११।

बोले, "इन्द्र, सुनो यह बात बताता हूँ
जन्म-मरण का समय, सदा से निश्चित् है।
कोई इसको बदल न सकता है जग में,
यह ध्रुव सत्य, अनादि काल से निश्चित् है"।१२।

तद्नन्तर प्रभु मौन हो गए थे तत्काल
ध्यान-मग्न हो गए—नेत्र दोनों मूंदे।
अगले ही पल भीतर के लोचन खोले,
बैठ गए चुपचाप शांत, पलकें मूंदे।१३।

परिनिर्वाण

शुक्ल ध्यान की चौथी स्थिति में जा पहुंचे
जहाँ कर्म, कोई भी शेष नहीं रहता।
शुद्ध-जीव, निज आभा से आलोकित था,
इसके नन्तर कोई बन्ध नहीं रहता।१।

कुछ ही पल में, देह त्याग कर जीव चला
वहाँ, जहाँ से, कभी न फिर आना होगा।
जीने-मरने—मरने जीने के क्रम में,
नहीं दुःख कोई भी, फिर पाना होगा।२।

गौतम गणधर का मोह-भंग और केवलज्ञान

तेज बीच, तेज मिला
तत्व बीच, तत्व मिला।
जीव गया प्रभु का तो,
पाई थी सिद्ध-शिला।१।

× ×

जान लिया गौतम ने
यह, पथ में ही आते।
वज्र गिरा माथे पर,
क्यों, प्राण नहीं जाते ?२?

व्याकुल होकर बैठे
नयनों में जल लाए।
निर्मोही 'वीर' कहो तो,
यह क्यों नहीं बताए ?३?

अन्तिम क्षण में, मुझको
क्यों भेजा था, तुमने ?
भूल हुई क्या, कह दो,
क्यों छोड़ा था, तुमने ?४?

× ×

तुमने ठीक कहा था
झूठे जग के नाते !
जाने से पहले तो,
कुछ मुझ को कह जाते !५!

मन भीतर से टूटा
मोह-बन्ध था छूटा।
घाती कर्म हुए क्षय,
सारा ही जग छूटा।६।

थोड़े पल का चिन्तन—
शुक्ल-ध्यान में पहुंचे।
चारों कर्म खपाकर—
उच्च स्थान में पहुंचे।७।

केवलज्ञान हुआ तब
परम सिद्धि को पाया।
कुछ ही पल में मुनि ने,
यह दुर्लभ पद पाया।८।

इति शुभम्

समाप्तम्

चौंसठ इन्द्रों से हो पूजित
तीन लोक से अर्चित पूजित !
संयम, शील, अपरिग्रह समता
सब पर करुणा—सब पर ममता ।।
ऐसे प्रभु की आरती जय जय !४! श्री महावीर की······

अन्धकार औ—' कष्ट-निवारक
दीन दुखी के हर पल तारक !
कोटि कोटि कर्मों के नाशक
हे जिनेन्द्र ! हे अद्भुत् साधक !!
सबके कल्याणक की जय जय !५! श्री महावीर की······

जो महावीर प्रभु के गुण गावे
उसके निकट दुःख ना आवे ।
रोग-शोक कुछ भी न सतावे
उस जग-कल्याणक की जय जय ।।
श्री महावीर की आरती जय जय !६! श्री महावीर की······

फिर भी इसको लिपटा रहता
पीड़ा की दल दल में गलता,
चन्दन से लिपटा यह विषधर–
अपने ही विष में है जलता;

पीड़ा से परित्राण नहीं है
प्राणों का निर्वाण नहीं है,
फिर यह जलता, बुझता दीपक–
कैसे तम को जीत सकेगा ??

करतल पर प्राणों का दीपक
ज्योतिर्मय, स्नेहिल यह दीपक,
प्राणों से प्राणों का विनिमय–
दिखलाता जाता यह दीपक ;

इसे धरा के आंचल में रख
अलख ज्योति के लोचन में लख,
मानव, एक बार तो करले,
अविरल अर्चन, नत्‌शिर पूजन ;

और देख ले, नन्हा दीपक,
कैसे तम को जीत सकेगा ??

जिसने मन को जीत लिया है
वह जीवन को जीत सकेगा !!

महापुरुषों के विचार एवं शुभाशीर्वाद

प्रात:स्मरणीय पूज्य गुरुदेव **श्रीमद्विजय समुद्र सूरीश्वर जी**
महाराज साहब, लुधियाना।

दि० १५–१२–७५

'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' (महाकाव्य) के बहुत से अंश एवं सर्ग मैंने स्वयम् कवि श्री अभयकुमार यौधेय के मुख से सुने हैं और देखे भी हैं। प्रभु महावीर का यह सम्पूर्ण काव्यमय जीवन चरित्र, अत्यन्त मनोहारी और प्रिय लगा। यह घर घर में श्रद्धा और भक्ति से पढ़ा जाए, ऐसी मेरी मनोकामना है। महाकाव्य का एक एक पद– भाव और भक्ति से भरपूर है। भगवान् महावीर की यह प्रेरक जीवन-गाथा, पूरे मानव समाज का उत्थान करे और प्रत्येक भाई बहिन इसे पढ़कर तथा मनन करके, अपने जीवन को उज्ज्वल बनावे, यही मेरी भावना है। इस महाकाव्य के पदों को साज संगीत से गाने से सुनने वालों को बहुत आनन्द आएगा। इसके रचनाकार कवि श्री 'यौधेय' को मेरा आशीर्वाद।

× ×

प्रात:स्मरणीय आचार्य सम्राट **श्री श्री आनन्द ऋषि जी**
महाराज साहब, घोंडनदी (महाराष्ट्र)

दि० २–१०–७५

आज रोज अभयकुमार जी यौधेय द्वारा रचित 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' नामक महाकाव्य की पाण्डुलिपि देखी। कुछ सर्ग सुने और देखे। बहुत आनन्द मिला। भगवान् महावीर पतित पावन थे। उनका जीवन दर्शन और व्यक्तित्व इस महाकाव्य के माध्यम से जनता तक पहुँचेगा, यह सोचकर मन को हर्ष हुआ। मुझे कविश्री का यह प्रयास अत्यन्त प्रिय, शुभ और श्रेष्ठ लगा। ग्रन्थ का पठन पाठन घर घर में हो, यही मेरी शुभ कामना है।

× ×

दिनांक १७-१-७६ को बीकानेर में आचार्य प्रवर श्री श्री १००८ पूज्य श्री नाना लाल जी महाराज साहब की आज्ञा से दो बार, उन्हें, उनके मुनि समुदाय तथा श्री संघ को यह महाकाव्य सुनाया। आचार्य देव ने बहुत ही स्नेह से कविश्री की पीठ थपथपाई और प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद दिया।

× ×

पू० जैनाचार्य श्रीमद्विजय धर्मसूरीश्वर जी महाराज साहब के सुयोग्य शिष्य
विद्वद्रत्न मुनि श्री यशोविजय जी महाराज साहब, बम्बई।

दि० २७-१२-७५

'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि का अवलोकन किया। कवि श्री अभयकुमार यौधेय ने परिश्रम साध्य, सुन्दर प्रयास किया है, इसमें सन्देह नहीं। इनका यह प्रयास सफल और सर्वत्र समादृत हो।

मुनि यशोविजय का हार्दिक धर्मलाभ

× ×

विद्वद्रत्न परम पण्डितवर्य खरतरगच्छीय तपस्वी मुनि
श्री जयानन्द जी महाराज साहब, कुशल भवन, जोधपुर।

दि० १५-११-७५

भाई श्री अभय कुमार जी यौधेय ने २५वीं निर्वाण शताब्दी के पुनीत अवसर पर वीर प्रभु का सारा जीवन चरित्र सरल हिन्दी भाषा में रचकर महान् सुकृत किया है। मैंने उनकी पद्य रचना सुनी और पढ़ी। कवि श्री का प्रयास सराहनीय है। मेरी अन्तराभिलाषा यह है कि यह जन जन के घर में पहुँचे और अनेक आत्मा अपना आत्मकल्याण करें।

× ×

व्याख्यान भारती, जैन कोकिला, परम पूज्या प्रवर्तिनी जी,
आर्यारत्न श्री विचक्षणश्री जी महाराज साहब, दिल्ली।

दि० ६-२-७५

साहित्य लेखक, कवि श्री अभयकुमार जी 'यौधेय' ने एक गुरुतर कार्य हाथ में लिया है। उन्होंने भगवान् महावीर का जीवन चरित्र, महाकाव्य के रूप में लिखा है। अरिहन्त भक्ति का यह प्रतीक-कार्य, अति प्रशंसनीय

है। मैं इनके परिश्रम की सफलता की शुभकामना करती हूँ। महावीर के उपासक बन्धुओं का कर्तव्य है कि इस कार्य में सहयोगी बन, पुण्योपार्जन करें।

× ×

परम पूज्य प्रवर्तक मरुधर केशरी, कविवर्य, मुनि **श्री मिश्रीमल जी** महाराज साहब, जसनगर, जिला नागौर।

दि० १२-११-७५

छप्पय छन्द

बनी कृति अति ललित, फलित फल आतम उजारी।
करते विबुद्ध बखान कीर्ति केतु जग जहारी॥
शासन पति महावीर, प्रति तव भक्ति प्रसारी।
समय मांग के साथ, लेखनी चली तिहारी॥
उत्साह, उमंग, उद्योगयुत, काम गुरुतर कर लिया।
हिन्दी काव्य महावीर का, अभय कवि लेखन किया॥१॥

फैले घर घर नगर, पाय जन जन में आदर।
ग्रन्थ लेखनि और कवि का गौरव सादर॥
होवे हाथों हाथ, प्रसारण, पढ़ें हो पुलकित मन से।
जैसे कृपण होय मुदित, पाय कर अगणित धन से॥
दिग्दिगन्त फैले सुयश, मुनिजन गुणिजन मन चहे।
'मिश्री' सम मीठा लगे, रहे चिरायु ग्रन्थ यह॥२॥

× ×

ज्योतिर्विद पू० श्री मालव रत्न पं० प्रवर **श्री कस्तूरचन्द जी** महाराज साहब, रतलाम।

दि० १०-३-७५

श्रमण भगवान् महावीर के अमर जीवन पर महाकाव्य की रचना द्वारा, भगवान् के पवित्र जीवन एवं सिद्धान्त के विश्वव्यापी प्रचार व प्रसार में आप जो सहयोग दे रहे हैं, वह प्रशंसनीय है। मैं आशा करता हूँ कि इस अनुपम महाकाव्य की रचना द्वारा, समस्त विश्व को अपूर्व धर्म लाभ होगा। रचनाकार महाकवि श्री यौधेय को आशीर्वाद!

जिन शासनरत्न शान्त मूर्ति पूज्य गुरुदेव, जैनाचार्य श्रीमद्विजय
समुद्र सूरीश्वर जी महाराज साहब के पट्टधर पू० जैनाचार्य
श्रीमद्विजय इन्द्र दिन्न सूरीश्वर जी महाराज साहब

दि० १७-४-७५

पुण्यात्मा, 'कविकुल कमल' अभय कुमार यौधेय ने हिन्दी भाषा में श्रमण भगवान् महावीर के जीवन पर अनुपम काव्यमयी रचना की है। कितने ही अंश हमने स्वयं देखे हैं और उनके मुख से सुने हैं। अत्यन्त सुन्दर एवं सारगर्भित रचना बनी है। विश्व में यह अनुपम महाकाव्य प्रसिद्ध होकर समाज के सामने आने पर अतिप्रिय होगा यह मेरा दिल कह रहा है।

× ×

परम पूज्या महासती श्री **मृगावतीश्री जी म० सा०** ने भी आशीर्वाद दिया है।

× ×

श्रद्धेय कवि श्रेष्ठ, अपूर्व साधक, उपाध्याय
श्री अमरचन्द जी महाराज साहब, राजगृह।

दि० १८-४-७५

श्री यौधेय जी द्वारा रचित 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र', महाकाव्य की नमूने के तौर पर कुछ पंक्तियाँ देखीं और सुनीं। काव्य में महावीर के जीवन की छवि को काफी विशदता के साथ, प्रौढ़ एवं परिपक्व शैली में अंकित किया है। भाषा प्रवाहशील है। साथ ही सहज बोधगम्य भी है। जितना कुछ पढ़ा है, मन को बहुत अच्छा लगा है। कवि श्री यौधेय के लिए हार्दिक आशीर्वाद एवं मंगल कामनाएं।

× ×

परम श्रद्धेय बृहत् खरतरगच्छीय परम भट्टारक आचार्य
श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज साहब

महाकवि श्री अभय कुमार यौधेय द्वारा रचित, 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' महाकाव्य उनकी सुरुचि और अन्तर्भावना का स्पष्ट परिचायक है। निश्चित यह महाकाव्य, युग की प्रतिनिधि रचना सिद्ध होगी। मंगल कामनाएं।

परम पूज्य मालव केसरी, महासन्त पूज्य **श्री सौभाग्यमल जी**
महाराज साहब, खाचरौद (उज्जैन)

दि० १४-६-७५

कवि कुल कमल श्री अभय कुमार जी यौधेय द्वारा रचित, 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' (सम्पूर्ण महाकाव्य) देखा। सकल श्रीसंघ की उपस्थिति में भी सुना। इस समय, ऐसे ग्रन्थ की बहुत आवश्यकता थी। प्रभु महावीर का यह जीवन चरित्र लोक भाषा हिन्दी में होकर प्रत्येक घर में मौजूद रहे और धर्म प्रेमी इसे प्रतिदिन पढ़ें और मनन करें। यही मेरी शुभ कामना एवं प्रेरणा है।

× ×

परम पूज्य पन्यास **श्री पूर्णानन्द विजय जी** महाराज साहब
(कुमार श्रमण), बोरीवली (बम्बई–६२)

दि० २८-१०-७५

भगवान् महावीर की जीवन गाथा को पद्यबद्ध ग्रन्थ के रूप में तैयार किया है। यह जान कर अतीव आनन्द होता है। 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' (महाकाव्य), यह नाम भी सुन्दर है। पद्य तथा ललित हिन्दी भाषा में ऐसा काव्य, अभी तक देखने में नहीं आया। अतः इसके रचनाकार महाकवि श्री अभय कुमार यौधेय के इस पवित्र कार्य की, मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ, और कामना करता हूँ कि यह महाकाव्य भारतीय जनता के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो।

× ×

राजस्थान केसरी पूज्य **श्री पुष्कर मुनि जी** महाराज साहब
सादड़ी सदन–पुणे

दि० २६-६-७५

कलम कलाधर स्नेह सौजन्य मूर्ति श्री अभय कुमार यौधेय रचित 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' महाकाव्य के अनेक पद, उनके मुख से सुने हैं। उन पदों में चुम्बक सा आकर्षण है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनका प्रस्तुत ग्रन्थ, अवश्य ही जन जन के मन को लुभाएगा।

शुभ कामनाओं सहित।

पण्डित रत्न, मनस्वी साहित्यकार **श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री**
महाराज साहब, पुणे ।

दि० २८-६-७५

कविकुल केसरी अभय कुमार यौधेय ने, स्वरचित 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' के कई अंश सुनाए । उसके आधार पर यह साधिकार कहा जा सकता है कि उपरोक्त ग्रन्थ के एक-एक पद में, उनकी प्रतापपूर्ण प्रतिभा के सहज दर्शन होते हैं । कवि की प्रस्तुत कृति, कवि को अवश्य ही कीर्ति प्रदान करेगी । यही मेरी हार्दिक शुभ कामना है ।

× ×

कविवर्य, महामनस्वी जैन श्रमण, पूज्य **श्री गणेश मुनि जी शास्त्री**
जोधपुर

दि० ५-१२-७५

'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' के निर्माता हैं—कवि कुल भूषण श्रीयुत् अभय कुमार 'यौधेय' । इसमें उनका महाकवि रूप मुखरित हुआ है । २५ वीं निर्वाण शताब्दी के पुनीत प्रसंग पर यौधेय जी की भगवान् महावीर के चरण कमलों में यह सबसे श्रेष्ठ व सुन्दर रचनात्मक भेंट कही जा सकती है । ग्रंथ की भाषा सरल और सुबोध होने से गीता और रामायण की तरह यह घर-घर में पढ़ा जा सकेगा, ऐसा मेरा मन्तव्य है ।

× ×

परम पूज्या महासती **श्री उज्ज्वल कुमारी जी** महाराज साहब
के आदेश से, अहमदनगर ।

दि० ५-१०-७५

"श्रमण भगवान् महावीर चरित्र"
पढ़ेंगे सभी मानव यत्र तत्र ।
पावन होंगे सभी के गात्र ।
मानो आए इसमें सभी शास्त्र ।
'अभय कुमार यौधेय' तुम बने पवित्र ।
प्रभु काव्य लिखने में, तुम्हीं थे पात्र ।
धन्यवाद देंगे सभी तुम्हें दिन रात्र ।।

—साध्वी धर्मशीला एम० ए०
द्वारा प्रेपित

महाराष्ट्र केसरी, परम विदुषी, व्याख्यान वाचस्पति, महासती
श्री प्रीति सुधा जी महाराज साहब, बीड़ (महाराष्ट्र)

दि० ६-७-७५

श्री अभय कुमार जी यौधेय ! कोटिशः धन्यवाद है आपको।

आप इतना बड़ा महाकाव्य इतनी थोड़ी अवधि में सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लोगे, ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा था। बहुत प्रसन्नता हुई। २५ वीं निर्वाण शताब्दी की कुछ अमर कृतियों में आपकी यह सरस शैली से युक्त बहुमोल काव्य कृति सर्वोत्तम स्थान को प्राप्त करे इसी अन्तर्कामना के साथ।

× ×

पंजाबी महासती परमपूज्या **श्री केशर देवी जी** महाराज साहब
पुणे

दि० १०-१०-७५

श्रमण भगवान् महावीर का जीवन स्वयं ही महाकाव्य है। प्रसिद्ध कवि श्री अभय कुमार जी यौधेय ने उसे अपनी सरस और सुललित संगीतात्मक शब्दावली में प्रस्तुत करके सर्व साधारण तक पहुँचा कर जो पुण्य कार्य किया है, इसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं।

× ×

पूज्य श्री पंजाब प्रवर्तक, **मुनि श्री फूलचन्द जी** श्रमण
महाराज साहब (लुधियाना)

दि० १८-१-७५

भगवान् महावीर का जीवन वृत्त, मनोवैज्ञानिक रीति से, प्रणीयमान हिन्दी पद्यात्मक महाकाव्य की रचना श्री अभय कुमार 'यौधेय' कर रहे हैं। रचना, सभी के लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय है। उनकी यह कृति अमर रहे, इसी मंगल कामना के साथ।

× ×

पू० गणी **श्री जनक विजय जी** महाराज साहब

दि० ८-५-७५

कवि श्री अभय कुमार यौधेय, श्रमण भगवान् महावीर के जीवन की पद्य रचना कर रहे हैं। हम सबको बहुत प्रसन्नता हुई। जैन समाज एवं

जैन दर्शन के परम पण्डित **प्रोफेसर पृथ्वीराज जी जैन,**
एम० ए० शास्त्री, अध्यक्ष, संस्कृत तथा जैन धर्म विभाग
श्री आत्मानन्द जैन कालेज, अम्बाला शहर ।

दिनांक ११-१२-७५

बन्धुवर श्री अभयकुमार यौधेय द्वारा ग्रथित पद्यवद्ध महाकाव्य 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' के अनेक अंश देखने व श्रवण गोचर करने के शुभावसर को जीवन का एक परम सौभाग्य समझता हूँ। सरल सुबोध धारा प्रवाह भाषा, प्रभावशालिनी, ओजस्विनी शैली, भावानुकूल शब्द विन्यास और माधुर्य इसके विशिष्ट गुण हैं। एक उत्कृष्ट विशेषता यह है कि इसे पठन, श्रवण, मनन, गायन आदि में से किसी का भी विषय बनाया जा सकता है।

मेरा विचार है कि यह सर्वाङ्ग सुन्दर—सुरम्य रचना, पंजाब जैन संघ के एक सदस्य की, भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में, समस्त मानव समाज को एक अनुपम देन है। इसका प्रचार प्रसार हमारा परम कर्त्तव्य है।

× ×

पूज्य जैनाचार्य **श्रीमद्विजय प्रकाशचन्द्र सूरीश्वर जी** महाराज साहब
सिविल लाइन, लुधियाना

'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' (महाकाव्य) की रचना करके महाकवि **श्री अभय कुमार यौधेय** ने जैन समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया है। प्रभु महावीर की पावन गाथा घर-घर श्रद्धापूर्वक गाई सुनी जाए, यह मेरी अभिलाषा है। रचना का महत्व देखते हुए, समाज, कविश्री का सम्मान सत्कार करे और इस ग्रन्थ के प्रचार प्रसार में तन-मन-धन से सहयोग देवे। यही मेरी भावना है।

× ×

परम पूज्य अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य **श्री तुलसी जी** महाराज साहब को उनके जयपुर वर्षावास १९७५ में इस ग्रन्थ के कुछ भाग सुनाए। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कविश्री की पीठ थपथपाई और आशीर्वाद दिया।

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-११०००४.

President's Secretariat,
Rashtrapati Bhavan,
New Delhi-110004.

पत्रावली सं० ८-एम/७५

अगस्त २, १९७५

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम दिनांक २९ जुलाई, १९७५ का आपका पत्र प्राप्त हुआ और जानकर प्रसन्नता हुई कि "श्रमण भगवान् महावीर चरित्र" के प्रकाशन का आयोजन किया गया है। आपके प्रयास की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

भवदीय,
खेमराज गुप्तः
(खेमराज गुप्तः)
राष्ट्रपति का अपर निजी सचिव।

× ×

उपराष्ट्रपति, भारत
नई देहली

Vice-President, India
New Delhi

अगस्त २, १९७५

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक ३० जुलाई, १९७५ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप "श्रमण भगवान् महावीर चरित्र" सम्पूर्ण महाकाव्य प्रकाशित करने जा रहे हैं। मैं आपके इस प्रयास की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूँ।

आपका,
ब० दा० जत्ती

कृषि तथा सिंचाई मंत्री भारत सरकार नई दिल्ली-११०००१	Minister of Agriculture & Irrigation Government of India New Delhi-110001

No. 6338/MCA & 9775 दि० २ अगस्त, १९७५

भगवान् महावीर प्रकाशन संस्थान, गाजियाबाद द्वारा श्री अभयकुमार जी 'यौधेय' द्वारा रचित 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' नामक महाकाव्य के प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है, यह ज्ञात हुआ।

ग्रन्थ लोकप्रिय बने और संस्थान अपने प्रयास में सफल हो।

जगजीवन राम
(जगजीवन राम)

× ×

रेल मंत्री, भारत रेल भवन, नई दिल्ली-११०००१	Minister For Railways INDIA

सं० एम० आर० ३९१५-७५ दि० १० अक्तूबर, १९७५

संदेश

भगवान् महावीर भारत की ऐसी अमर विभूति थे जिन्होंने जीव दया, समता, अहिंसा और शांति का संदेश बहुत ही सशक्त ढंग से विश्व के समक्ष उपस्थित किया। उनका स्वयं का जीवन बहुत ही प्रेरणा-प्रद था। उनके जीवन पर श्री अभयकुमार यौधेय द्वारा सम्पूर्ण महाकाव्य की रचना वास्तव में प्रशंसनीय है।

मुझे विश्वास है कि यह महाकाव्य प्रकाशन के उपरान्त जनता में लोकप्रिय होगा। प्रकाशन की सफलता के लिए शुभकामनाएं।

कमलापति
(कमलापति त्रिपाठी)

मुख्य मंत्री | मध्य प्रदेश शासन (सील) | भोपाल

क्रमांक—५३६ | दि० १४ अगस्त, ७५

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगवान् महावीर प्रकाशन संस्थान ने श्री अभयकुमार 'यौधेय' विरचित "श्रमण भगवान् महावीर चरित्र" महाकाव्य के प्रकाशन की आयोजना की है।

भगवान् महावीर का जीवन अत्यन्त प्रेरणामय है और उनके द्वारा निर्देशित सिद्धान्तों पर चलकर प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का उत्थान कर समाज और राष्ट्र के लिए अपूर्व योगदान दे सकता है। समता, अहिंसा, सत्य, शांति इत्यादि उनके अमर सिद्धांत हैं जिनकी विश्व को आज अतीव आवश्यकता है।

मुझे विश्वास है कि इस महाकाव्य में वर्णित भगवान् महावीर के व्यक्तित्व और आदर्शों से लोगों को प्रेरणा प्राप्त होगी।

मेरी शुभेच्छायें आपके साथ हैं।

प्रकाशचन्द सेठी
(प्रकाशचन्द सेठी)

× ×

सुधाकर पाण्डेय
सदस्य लोकसभा

गोला दीनानाथ वाराणसी
४२, अशोक रोड, नई दिल्ली

दि० ७ अगस्त, ७५

प्रियवर,

आपका पत्र क्रमांक १५७/ए दिनांक ३-८-७५ मिला। श्री अभयकुमार 'यौधेय' विरचित, 'श्रमण भगवान् महावीर चरित्र' के प्रकाशन का समाचार जानकर प्रसन्नता हुई। मुझे विश्वास है कि लोक भाषा में प्रकाशित यह ग्रन्थ विश्व में समता, अहिंसा और शांति का सन्देश प्रसारित करने के अपने अनुष्ठान में सफल होगा। यद्यपि मैंने यह ग्रन्थ देखा नहीं है किन्तु श्री अभयकुमार 'यौधेय' की रचनाओं से परिचित हूँ यह भी उनकी परम्पराओं में ही होगा।

आपके आयोजन की सफलता चाहता हूँ।

आपका,
सुधाकर पाण्डेय

"श्रमण भगवान् महावीर चरित्र" (महाकाव्य) के बहुत से अंश हमने स्वयं रचनाकार महाकवि श्री अभयकुमार यौधेय के मुख से सुने।

भगवान् महावीर की यह पावन-मन भावन गाथा लिखकर महाकवि ने मानव समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया है। प्रतिदिन सुबह शाम, इस पावन ग्रंथ का वाचन करने से निश्चित ही कल्याण होगा, यह हमारी आस्था है।

चैम्बर आफ हैन्डलूम इन्डस्ट्रीज (रजि०)

ह० कन्हैया लाल जैन

महामंत्री

× ×

हमने "श्रमण भगवान् महावीर चरित्र" महाकाव्य के संक्षिप्त अंश कवि कुल कमल के मुखार-विन्द से श्रवण कर आनन्द का अनुभव किया तथा इस काव्य से जो आपसी भिन्नतायें अवलोकन होती थीं उनका श्रवण मात्र से ही अन्त होता है। अतः यह ग्रन्थ राष्ट्र हित में पूर्ण सार्थक सिद्ध होगा।

सौभाग्यमल जैन

मंत्री–मेवाड़ मित्र मंडल, मेरठ

× ×

प्रथम संस्करण के प्रचार-प्रसार में सहयोगी महानुभाव

श्री धर्मपाल ओसवाल, लुधियाना।

पू० दादा जी श्री मणिधारी जिनचंद्र सूरि जी, दादावाड़ी, महरौली द्वारा प्रबन्धक, श्री धनपतसिंह जी भंसाली, नई दिल्ली।

श्री व० स्था० जैन संघ, सिंहपोल, जोधपुर।

अ० भा० स्था० जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली।

श्री दीपचंद सुरेन्द्रकुमार, मद्रास-१।

श्री जसराज जी भंवरलाल जी, गंगाशहर, बीकानेर।

मै० जैनसंस पिस्टन, प्रतापपुरा, आगरा।

श्री खैरातीलाल जैन नरपतशाह खैरातीशाह वाले, शक्तिनगर, नई दिल्ली।

श्री स्वर्णसेवा जैन फंड, शाखा, जयपुर।

प्राणिमित्र सेठ श्री आनंदराज सुराणा, दिल्ली।

श्री विनोदीलाल जयंतीप्रसाद जैन, सदर, मेरठ।

श्री दानमल अनारचंद जैन, दिल्ली-६।

श्री कन्हैयालाल जैन, राजस्थान खादी वीविंग फैक्टरी, छीपीवाड़ा, मेरठ।

श्री त्रिलोकचंद कपूरचंद ढड्ढा, दिल्ली-६।

श्री सलेखचंद जी जैन, महावीर आरनामेंट्स, दिल्ली-६

श्री जवाहरलाल जैन, शक्तिनगर, दिल्ली-७

श्री डी० के० जैन, साड़ी म्यूजियम, दिल्ली-६

श्री हरवंस लाल जी जैन (रावलपिंडी क्लाथ स्टोर्स), जैननगर, मेरठ।

श्री जीयालाल देवकुमार जी जैन (बामनौली वाले), जैननगर, मेरठ।

श्री साईदास जी जैन (प्रधान-एस० एस० जैन स०), जैननगर, मेरठ।

मै० नाहर स्टील इंडस्ट्रीज, रेलवे रोड, मेरठ।

श्री बंसीलाल जी बैद, जंगपुरा, नई दिल्ली।

श्रीमती कंचनकुमारी जैन, रामनगर, नई दिल्ली।

श्री रामचंद जी भंसाली, दिल्ली-६।

श्री जे० डी० जैन, जैन रोलिंग मिल, गाजियाबाद।

श्री रामलाल इन्द्रसेन जी जैन, दिल्ली-६।

श्री मुनीलाल जी लोहटिया, लुधियाना।

श्री पारसकुमार जी सेठिया, खाचरोद (म० प्र०)।

श्री भैराजी कालूजी धरमचंद जी सर्राफ, खाचरोद (म० प्र०)।

श्री समरथमल जी कांठेड़, नागदा (म० प्र०)।

श्री शाह केशवलाल मणिलाल भाई, पुणे ।
श्री हीरालाल जी संचेती, गुडीयातम, मद्रास ।
श्री नरेन्द्र कुमार जैन सु० श्री महावीर प्रसाद जैन, दिल्ली गेट, मेरठ ।
श्री प्रेमराज जी जैन, गुडीयातम, मद्रास ।
श्री व० स्था० जैन सं०, बीड़, महाराष्ट्र ।
श्री गौड़ी पार्श्वनाथ चै० ट्र०, पुणे ।
श्री रतिलाल भाई भीकाशाह, बोरेवली, बम्बई ।
श्री श्वे० जै० सं० ढोलकी मोहल्ला, मेरठ ।
श्री रामजीलाल भाई वालजी भाई, बोरेवली, बम्बई ।
श्री पा० जैन मन्दिर, शास्त्रीनगर, जोधपुर ।
श्री शांतिलाल जी पारेख, सरदारपुरा, जोधपुर ।
श्री लब्धिचन्द जी सुराणा, जोधपुर ।
श्री मुकुंदचंद जी पारेख, परली, राजस्थान ।
श्री एस० जयराज जी मुणोत, जोधपुर ।
श्री मूलचंद जी एण्ड को०, मंडोर, जोधपुर ।
श्री नन्द कुमार जैन न्यू प्रेमपुरी, मेरठ ।
श्री करोड़ीमल जी बच्छावत, जोधपुर ।
श्री जैन श्वे० खर० सं०, कुशलभवन, जोधपुर ।
श्री कनकराज जी गोलेछा, जोधपुर ।
श्री वीतराग होजरी, पुराना बाजार, लुधियाना ।
श्री रामचद गुलाबचंद जी कोचर, बीकानेर ।
'मित्रमिलन', जैननगर, मेरठ ।
मै० दामोदर दास वकीलचंद जैन, मेवामंडी, घंटाघर, मेरठ ।
श्री खैरातीशाह जी जैन, जैननगर, मेरठ ।
श्री बसीटूमल जी जैन एण्ड संस, जैननगर, मेरठ ।
श्री वकीलचंद जैन, सु० खजाना शाह जैन, जैननगर, मेरठ ।
ला० शीतल प्रसाद जैन, चेयरमैन, न० पा० बड़ौत ।
श्री श्वे० जैन महिला मंडल, सरधना (मेरठ) ।
श्री चिमनलाल दयाराम जी जैन, सरधना (मेरठ) ।
श्री ओमप्रकाश सत्येन्द्रकुमार जैन, सरधना (मेरठ) ।
श्री जैन श्वे० सं० सरधना (मेरठ) ।
श्री मोहनलाल रोशनलाल जैन (नोटों वाले) दिल्ली-६ ।
श्री धनपत सिंह भंसाली, दिल्ली-७ ।
श्री माधोलाल सुआलाल जैन, मेरठ ।
मै० यार्क एम्ब्रायडर्ज, नई सड़क, दिल्ली-६ ।
मै० रोशनलाल हरकचन्द जैन, दिल्ली-६ ।
श्री लक्ष्मण सिंह जी भंसाली, दिल्ली-६ ।
श्री कश्मीरी लाल हितेश कुमार जैन, जैननगर, मेरठ ।
श्री सुमतप्रसाद जैन (शाहदरा वाले) गाजियाबाद ।
श्री पंजूशाह, धर्मचन्द जैन (अम्बाला) जैननगर, मेरठ ।
श्री श्रीपाल जैन रोहतक रोड, नई दिल्ली ।